प्रकाशक
बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्
सम्मेलन-भवन
पटना-३

प्रथम संस्करण, वि॰सं॰ २०११, सन् १९५५ ईसवी

मूल्य ३॥) : सजिल्द ४॥)

मुद्रक
मदन लाल गुप्त, बी॰ एस-सी॰
टेकनिकल प्रेस, इलाहाबाद

वक्तव्य

परमात्मा की सृष्टि का सौन्दर्य बड़ा कुतूहल-जनक है। इधर पृथ्वी पर वन-पर्वत की सघन नीलिमा के साथ-साथ अगाध रत्नाकर का भी अनन्त विस्तार है, उधर नयनाभिराम नभोमण्डल असंख्य ज्योतिष्क पिण्डों से अलंकृत और जगमग है। विश्व ब्रह्माण्ड की इस विलक्षण शोभा का चिन्तनमात्र जहाँ साधारण मनुष्य के मस्तिष्क को चकित और मुग्ध-स्तब्ध कर देता है, वहाँ ज्योतिर्विज्ञानवेत्ता विद्वान् उस शोभा के रहस्य का उद्घाटन करके विस्मित मनुष्य के आनन्द की अभिवृद्धि कर देते हैं। इस बात का प्रमाण प्रस्तुत पुस्तक में मिलेगा।

सृष्टितत्त्वविद्-दार्शनिक साहित्यकारों के मतानुसार भूगोल और खगोल—दोनों ही परमात्मा के रचे हुए रमणीय महाकाव्य हैं। जो विज्ञानविचक्षण हैं, वे इन महाकाव्यों के तत्त्व-विश्लेषण के मर्मज्ञ हैं और जो साहित्यस्रष्टा हैं, वे इनके बाह्याभ्यन्तरसौन्दर्य के रसज्ञ हैं। इस पुस्तक में वैज्ञानिकता और साहित्यिकता का किञ्चित् मिश्रण होने से गहन विषय भी रोचक बन गया है।

परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष विभिन्न विषयों पर विशेषज्ञ विद्वानों के भाषण कराये जाते हैं, जो फिर पुस्तक-रूप में प्रकाशित भी होते हैं। इस पुस्तक में डाक्टर गोरखप्रसाद के भाषणों का समावेश है। सन् १९५३ ई० में ३१ अगस्त से उनकी भाषणमाला का आरंभ हुआ था। परिषद् के अनुरोध से उन्होंने पटना-सायन्स-कालेज के फिजिक्स लेक्चर-थिएटर में ये व्याख्यान दिये थे। इनको प्रकाशचित्रों के सहारे उन्होंने जैसा आकर्षक बना दिया था, इस पुस्तक को भी उन्होंने आवश्यक चित्रों से वैसा ही बना दिया है।

डाक्टर गोरख प्रसाद जी हिन्दी-संसार के यशस्वी विज्ञानशास्त्री लेखक हैं। उनके 'सौर परिवार' और 'फोटोग्राफी' नामक दोनों ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य-जगत् में बहुत पहले ही सम्मानित और पुरस्कृत हो चुके हैं। प्रयाग की विज्ञान-परिषद्-जैसी प्रतिष्ठित संस्था के संचालकों में वे अन्यतम हैं। काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में वे भारत के विश्वविख्यात गणित-विज्ञानाचार्य डाक्टर गणेशप्रसाद के प्रिय शिष्यों में थे। लगभग तीस वर्षों से वे प्रयाग-विश्वविद्यालय में 'रीडर' हैं। उनकी विद्वत्ता और कीर्ति हिन्दी के लिए निस्सन्देह गौरव-वर्द्धक है। हिन्दी के वैज्ञानिक साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए परमात्मा उन्हें चिरायु करें, परिषद् की यही शुभकामना है।

यह पुस्तक स्वयं लेखक ने ही अपनी देखरेख में छपवाई है। इसलिए इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है। आशा है कि लेखक की ख्याति इस पुस्तक को भी प्राप्त होगी।

वसन्तोत्सवावकाश
सं० २०११ वि०

शिवपूजन सहाय
(परिषद्-मंत्री)

भूमिका

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् ने जब मुझे किसी वैज्ञानिक विषय पर पाँच व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया तब मैंने सहर्ष स्वीकार किया। अपनी सौर-परिवार नामक पुस्तक प्रकाशित हो जाने के बाद मैं अनुभव कर रहा था कि ज्योतिष-संसार के अन्यान्य ज्ञातव्य विषयों पर भी गवेषणात्मक रीति से कुछ लिखा जाना चाहिए। यद्यपि व्याख्यानमाला में उन सब विषयों का समावेश नहीं है, तथापि हिन्दी में नवीन ज्योतिष-साहित्य के अभाव की कुछ पूर्ति इससे अवश्य होगी।

इस पुस्तक से नीहारिकाओं और विश्व-रचना के संबंध में आधुनिक खोजों तथा निर्णयों की झलक मिलेगी। मेरा उद्देश्य केवल यह नहीं रहा है कि उन खोजों और निर्णयों का अंतिम परिणाम बता दूँ, प्रत्युत् मेरा लक्ष्य यह रहा है कि उन परिणामों पर ज्योतिषी कैसे पहुँचे हैं, यह भी पाठकों को बता दूँ। आशा है, मैं इसमें कुछ सीमा तक सफल हो सका हूँ।

इस पुस्तक में कहीं भी उच्च गणित के चक्कर में पाठकों को नहीं फँसना पड़ेगा, कहीं भी उन्हें जटिल विवेचनों की उलझनों में नहीं अटकना पड़ेगा। मेरा अनुमान है कि यह पुस्तक ज्ञानवर्धक और साथ ही रोचक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक में दिये गये वेधशालाओं के तीन चित्र मेरी पुस्तक 'सौर-परिवार' से लिये गये हैं। उनके ब्लाक हिन्दुस्तानी ऐकैडेमी (प्रयाग) से मिले हैं; इस कृपा के लिए मैं उक्त संस्था का आभारी हूँ।

बेली ऐवेन्यू,
प्रयाग
५ मार्च, १९५५

गोरखप्रसाद

विषय-सूची

पृष्ठ

नीहारिकाएँ

प्रथम अध्याय

ज्योतिषियों के यंत्र

नीहारिकाएँ क्या हैं—स्वच्छ अँधेरी रात्रि में अनेक जगमगाते तारे दिखायी पड़ते हैं। अनादि काल से मनुष्य आश्चर्य करता रहा है कि वे क्या हैं। इतना तो प्राचीन काल के लोगों ने भी अनुमान कर लिया कि वे अत्यंत तप्त और स्वयं दीप्तिमान हैं। उन्होंने यह भी देख लिया था कि आकाशीय पिंडों में से चार-पाँच में एक विशेषता है, यह कि वे अन्य तारों के बीच चलते रहते हैं। उनको ग्रह कहा जाता है। कभी-कभी पूँछवाले तारे भी दिखायी पड़ते हैं। ग्रहों के समान ये भी तारों के बीच चलते रहते हैं। इसलिए ये भी वस्तुतः तारे नहीं हैं। इनके अतिरिक्त आकाश में तारों से पटी हुई एक मेखला-सी दिखायी पड़ती है, जिसे लोग आकाश-गंगा कहते हैं। इसे डहर, आकाश जनेऊ, आकाश नदी, मंदाकिनी, स्वर्णदी, सुरदीर्घिका इत्यादि भी कहते हैं। अंग्रेजी में इसे मिल्की वे (Milky way) या गैलेक्सी (galaxy) कहते हैं। मिल्की वे का अर्थ है 'दूधिया मार्ग'। गैलैक्सी शब्द यूनानी धातु गैला से निकला है, जिसका अर्थ भी दूध है। तारों के हिसाब से आकाश-गंगा स्थिर है। कोरी आँख से इसमें तारे पृथक-पृथक नहीं दिखायी पड़ते, परंतु बड़े दूरदर्शकों से फोटोग्राफ लेने पर इसमें असंख्य तारे दिखायी पड़ते हैं। दक्षिणी आकाश में दो वस्तुएँ और भी दिखायी पड़ती हैं, जो आकाश-गंगा के टुकड़े-जैसी जान पड़ती हैं। प्रसिद्ध पोर्चुगाली नाविक मैगिलन (लगभग १४८०-१५२१) के नाम पर ये पिंड मैगिलन-मेघ (Magellanic clouds, मैगिलन के बादल) कहलाते हैं। ये आकाशीय वस्तु पृथ्वी के दक्षिणी गोलार्ध से ही दिखायी पड़ते हैं। भारत से ये नहीं देखे जा सकते।

मैगिलन-मेघ की ही जाति के, परंतु उनसे कहीं छोटे, दो पिंड और आकाश में दिखायी पड़ते हैं, एक तो देवयानी (एँड्रोमिडा) तारामंडल में और दूसरा त्रिभुज (ट्रायंगुलम) तारामंडल में। ये दो, और दो मैगिलन-मेघ ये चारों नीहारिकाएँ हैं। नीहारिकाएँ उन आकाशीय वस्तुओं को कहते हैं जो तारों की तरह ही चमकीले हैं। परंतु विंदु-सरीखे न होकर कुछ दूर तक विस्तृत हैं। नीहारिका को अंग्रेजी में नेब्युला (nebula) कहते हैं और दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है, अर्थात कुहेसा, कुहरा। कोरी आँख से केवल पूर्वोक्त नीहारिकाएँ ही दिखायी पड़ती हैं; परन्तु दूरदर्शक की सहायता से लाखों नीहारिकाओं का पता चला है। अनुमान किया गया है कि माउंट विलसन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से, जो कुछ ही वर्ष पहले तक संसार का सबसे बड़ा दूरदर्शक था, १० करोड़ से भी अधिक नीहारिकाओं का पता चल सकता है। वर्तमान सबसे बड़ा दूरदर्शक २०० इंच व्यास का है, परन्तु अभी इससे पूरा काम नहीं लिया जा सका है। इससे आकाश का निरीक्षण करने पर संभवतः कई अरब नीहारिकाओं का पता चलेगा। कुछ लोग नीहारिकाओं की संख्या को संभवतः विशेष बड़ा न समझेंगे, क्योंकि वे समझते हैं कि तारों की संख्या असंख्य है और यदि उनके बीच १० करोड़ नीहारिकाएँ भी विद्यमान हैं तो कौन बड़ी बात है। परन्तु स्थिति ऐसी नहीं है। स्वच्छ-से-स्वच्छ रात्रि में तीन हजार

से अधिक तारे नहीं दिखायी पड़ते। प्रथम दृष्टि में तारे असंख्य अवश्य जान पड़ते हैं; परंतु यदि आप एक दूसरे के पास तीन तारे चुन लें और उनसे बने त्रिभुज के भीतर के सब तारों को गिनें तो आप को पता चलेगा कि क्रमबद्ध ढंग से काम करने पर तारों की गिनती सुगमता से की जा सकती है। वस्तुतः कोरी आँख से दिखायी पड़नेवाले सब तारों की सूची बन गयी है। गिनती में वे ६,००० से कुछ कम ही हैं। तारों को विविध मंडलों (constellations) में बाँट दिया गया है और प्रत्येक तारे के लिए क्रमांक या नाम नियत कर दिया गया है। दूरदर्शक से अवश्य बहुत-ही अधिक तारे दिखायी पड़ते हैं; परंतु नीहारिकाओं की संख्या का १० करोड़ होना ध्यान देने योग्य बात है।

आकाश में काली, अर्थात् प्रकाशहीन, नीहारिकाएँ भी हैं। प्रकाशयुक्त तारों और नीहारिकाओं को छिपा देने के कारण ही वे हमें प्रत्यक्ष होती हैं।

छोटे दूरदर्शकों में नीहारिकाएँ दूरस्थ पुच्छलतारों-सी जान पड़ती हैं, परंतु वे उनसे विभिन्न इस बात में हैं कि पुच्छलतारे तारों के बीच चलते रहते हैं और नीहारिकाएँ निश्चल रहती हैं। नीहारिकाओं की प्रथम सूची फ्रांस के चार्ल्स मेसिये (Charles Messier) ने आज से कोई पौने दो सौ वर्ष पहले बनायी थी; परंतु उसे नीहारिकाओं में रुचि नहीं थी। वह पुच्छल तारों की खोज में रहा करता था और नीहारिकाओं के कारण उसे बहुधा भ्रम हो जाया करता था। अवश्य ही, पुच्छल तारे अन्य तारों के सापेक्ष चलते हैं; परंतु उनके चलने, न चलने, का पता कई दिन तक वेध करते रहने पर लगता है। नीहारिकाओं की सूची रहने से मेसिये तुरंत बता सकता था कि दूरदर्शक में दिखायी पड़नेवाली वस्तु कोई नवीन पुच्छलतारा है या पुरानी
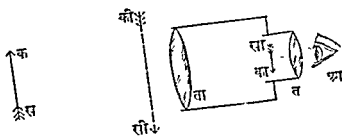
तालयुक्त दूरदर्शक

इस तालयुक्त दूरदर्शक में एक प्रधान ताल ता रहता है और एक चक्षुताल त। दूरस्थ वस्तु क ख की मूर्ति का खा पर बनती है जो खा पर आँख लगाने से बड़ी हो कर कौ खौ पर दिखायी देती है।

नीहारिका। मेसिये के पुच्छलतारा संबंधी आविष्कारों को लोग अब प्रायः भूल गये हैं, परन्तु उसका नाम उस नीहारिका-सूची के कारण अमर हो गया है जिसे स्वयं वह नगण्य समझता था। प्रमुख नीहारिकाएँ आज भी अपनी मेसिये क्रम-संख्या से इंगित की जाती हैं।

दूरदर्शक—नीहारिकाओं के विशेष अध्ययन के पहले यह समझ लेना अच्छा होगा कि दूरदर्शक क्या है, नीहारिकाओं की दूरी कैसे नापी जाती है, उनके वेग का पता कैसे चलता है और उनकी रासायनिक संरचना का ज्ञान हमें कैसे होता है।

इन दिनों दूरदर्शक द्वारा आँख से देखने के बदले साधारणतः दूरदर्शक से फोटो लिया जाता है। दूरदर्शक दो प्रकार के होते हैं, एक तो तालयुक्त और दूसरा दर्पणयुक्त। तालयुक्त दूरदर्शक तो फोटोग्राफर के साधारण कैमरे के समान ही होता है, केवल नाप में बहुत बड़ा होता है। स्वांतःसुखाय साधारण फोटोग्राफ लेनेवालों के कैमरे का ताल (लेंज) डेढ़-दो इंच या कम व्यास का होता है; परंतु नीहारिकाओं की फोटोग्राफी के लिए प्रयुक्त ताल का व्यास ४० इंच तक होता है। संसार के सबसे बड़े तालयुक्त दूरदर्शक के ताल का व्यास ४० इंच है। दूरदर्शक की लंबाई भी साधारण कैमरों की लंबाई से बहुत अधिक होती है, परंतु प्लेट या फिल्म उसी अनुपात में बड़ा नहीं होता। कारण यह है कि बड़ा फोटोग्राफ लेने पर तीक्ष्णता केवल बीच में आती है, और इसलिए ज्योतिषी केवल बीच के भाग में ही अपना प्लेट लगाता है। इसीलिए ज्योतिषी का दूरदर्शक कैमरे की आकार का न होकर लंबे तोप-जैसा होता है।
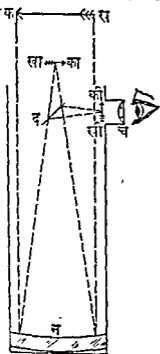
दर्पणयुक्त दूरदर्शक

दर्पणयुक्त दूरदर्शक में एक नतोदर दर्पण न रहता है जिससे दूरस्थ वस्तु क ख की मूर्ति कागज पर बन सकती है, परंतु दर्पण द के कारण शीशी पर बनती है। फिर चक्षुताल च से वह प्रवर्धित रूप में दिखायी पड़ती है।

दर्पणयुक्त दूरदर्शक में ताल के बदले एक नतोदर दर्पण रहता है; यह वही काम करता है जो ताल करता है। ताल तारे से चली अपने ऊपर पड़नेवाली सब प्रकाश-रश्मियों को मोड़ कर एक बिंदु पर एकत्र कर देता है और इस प्रकार तारे की मूर्ति या प्रतिबिंब बनाता है। नतोदर दर्पण भी तारे से आई प्रकाश-रश्मियों को एक बिंदु पर एकत्र करके मूर्ति बनाता है। इस मूर्ति को फोटोग्राफी के प्लेट पर पड़ने देने से फोटो खिंच जाता है। बड़े दूरदर्शक सब दर्पणयुक्त ही बनते हैं। कारण यह है कि चालीस इंच से बड़ा ताल अपने ही भार से कुछ लच जाता है और इसलिए फोटोग्राफ विकृत हो जाता है। ताल को बहुत मोटा बना नहीं सकते, क्योंकि उसके आर-पार प्रकाश जाना चाहिए। मोटाई बढ़ने से उसकी पारदर्शकता कम हो जाती है। दूसरी ओर, दर्पणों में मोटाई की कोई सीमा नहीं है। आवश्यकतानुसार उन्हें मोटा बनाया जा सकता है। इतना ही नहीं, उनकी पीठ में रीढ़ें डाली जा सकती हैं जो दर्पण को सुदृढ़ कर देती हैं। हाल में ही २०० इंच व्यास का दर्पणयुक्त दूरदर्शक बना है। इसके दर्पण में रीढ़ें लगी हैं।

तारों तथा अन्य आकाशीय पिंडों की फोटोग्राफी में एक विशेष कठिनाई पड़ती है, जो भूमि पर स्थित जड़ पदार्थों की फोटोग्राफी में नहीं पड़ती। वह यह है कि तारे सदा चलते रहते हैं। सूर्य अथवा चंद्रमा की भाँति वे भी प्रतिदिन पूर्व में उदय होते हैं और पश्चिम में अस्त होते हैं। इस कठिनाई पर ज्योतिषी ने विजय अपने दूरदर्शक को घड़ी-चालित बना कर पायी है। जिस वेग से तारा आकाश में चलता रहता है, ठीक उसी वेग से दूरदर्शक भी घूमता रहता है। यंत्र इतना सच्चा बना रहता है कि तनिक भी थरथराहट नहीं उत्पन्न होती।

दूरस्थ वस्तु की दूरी नापना

जब क्षेत्रमापक को किसी अति दूरस्थ वस्तु की दूरी नापनी रहती है तब वह दो स्थानों से अगम्य वस्तु का वेध करता है।

प्रधान दूरदर्शक के साथ एक दूसरा दूरदर्शक भी बँधा रहता है। ज्योतिषी उससे तारे को बराबर देखता रहता है। यदि तारे के हिसाब से दूरदर्शक लेशमात्र भी शीघ्र या मंद चलना आरंभ करता है तो बिजली का बटन दबा कर वह वेग को ठीक कर लेता है।
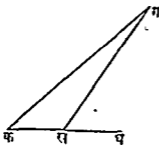
दूरी नापने का सिद्धांत

यदि कोण क, ख और दूरी कख ज्ञात हो जाँय तो त्रिभुज बनाकर दूरी कग ज्ञात हो सकती है।

दूरी नापना—नीहारिकाओं की दूरियाँ अरब-खरब मील से भी अधिक है। ये दूरियाँ आश्चर्यजनक तो हैं ही; परंतु इनका नापा जाना और भी आश्चर्यजनक है और फिर ये रीतियाँ ऐसे सरल सिद्धान्तों पर आश्रित हैं जिन्हें सभी समझ सकते हैं।

जब क्षेत्रमापक को किसी अति दूरस्थ वस्तु की दूरी नापनी रहती है, जिसके पास वह पहुँच नहीं सकता, तब वह दो सुविधाजनक बिंदु चुन कर उनके बीच की दूरी को सूक्ष्मता से नाप लेता है। मान लो, ये बिंदु क और ख हैं। मान लो, दूरस्थ वस्तु ग पर है। यदि कख की दिशा में घ कोई बिंदु है तो क्षेत्रमापक कोण

घ ख ग और कोण घ क ग को नापता है। क ख की लंबाई और पूर्वोक्त दोनों कोणों की नापें ज्ञात होने पर उसे त्रिभुज क ख ग की एक भुजा और दो कोण ज्ञात हो जाते हैं और इसलिए वह क ग की गणना सुगमता से कर लेता है। इसमें उच्च गणित की आवश्यकता नहीं है; हाई स्कूल तक ज्यामिति पढ़ा कोई भी विद्यार्थी त्रिभुज क ख ग को पैमाने के अनुसार बना कर क ग का मान ज्ञात कर सकता है।

इसी रीति से ज्योतिषी मंगल अथवा अन्य किसी निकटस्थ अवांतर ग्रह* की दूरी नापता है। कठिनाई केवल इस बात में पड़ती है कि कोण घ ख ग और घ क ग प्रायः एक ही निकलते हैं और इसलिए रेखाएँ क ग और ख ग प्रायः समानांतर रहती हैं। कोणों के नापने में तनिक भी त्रुटि होने से दूरी क ग में बहुत-सा अन्तर पड़ जाता है। इसलिए दूरी अनिश्चित हो जाती है। इस का बहुत-कुछ प्रतिकार क ख को खूब लंबा लेने से हो जाता है। परंतु क ख की लंबाई की भी एक सीमा है। रेखा क ख पृथ्वी के व्यास से बड़ी तो हो ही नहीं सकती। इसे प्रायः पृथ्वी के व्यास के बराबर लेकर और अत्यंत सावधानी से तथा शक्तिशाली दूरदर्शकों का प्रयोग करके फोटोग्राफ लिये गये हैं और उन फोटोग्राफों को सूक्ष्मदर्शक की सहायता से नाप कर एरॉस (Eros) नामक छोटे ग्रह की दूरी का पता चलाया गया है। इस दूरी के ज्ञात होते ही सूर्य की दूरी का पता चल जाता है, क्योंकि सिद्धान्ततः एरॉस और सूर्य की दूरियों का अनुपात हम जानते हैं। इस प्रकार पता चला है कि सूर्य हमसे लगभग सवा नौ करोड़ मील पर है।

अब मान लीजिए कि ऊपर के चित्र में क पृथ्वी की किसी स्थिति को सूचित करता है। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और इसलिए ६ महीने में वह सूर्य के उस पार ख पर पहुँच जाती है। इस प्रकार क ख लगभग सवा नौ करोड़ मील के दुगुने के बराबर है। ज्योतिषी क और ख से किसी तारे ग की दिशाओं को, अपने बड़े दूरदर्शकों से लिये गये फोटोग्राफों में, सूक्ष्मदर्शक से नापता है; उन दिशाओं के अंतर से उसे कोण ग ख घ और ग क घ का अंतर ज्ञात हो जाता है। फिर, ज्योतिषी कोण ग क घ को सुगमता से नाप लेता है। इस प्रकार वह त्रिभुज क ख ग से क ग को, अर्थात् तारे के दूरी को, नाप लेता है। निकटस्थ तारों की दूरी नापने का यही सिद्धान्त है। तारों की दूरी नापने की इस रीति को त्रिकोणमितीय रीति कहते हैं। केवल कुछ सौ निकटस्थ तारों की ही दूरियाँ इस प्रकार नापी जा सकी हैं, क्योंकि दूरस्थ तारों की दिशाएँ क से भी और ख से भी इतनी बराबर रहती हैं कि उनका अंतर वेध के अनिवार्य त्रुटियों से दब जाता है और तारे की दूरी की गणना व्यर्थ हो जाती है। परंतु कुछ सौ तारों की दूरियाँ ठीक से ज्ञात हो जाने पर हम, नवीन रीतियों से, अन्य तारों की दूरियों की तुलना ज्ञात दूरियों से कर सकते हैं। अब इन रीतियों पर विचार करने के पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि निकटस्थ तारे कितनी दूर हैं।

सबसे पास का तारा भी हमसे लगभग ३×१०^{१३} मील पर है, अर्थात् उसकी दूरी लगभग

३,००,००,००,००,००,००० मील

---

*मंगल और बृहस्पति की कक्षाओं के बीच चलनेवाले छोटे-छोटे ग्रहों को 'अवांतर ग्रह' कहते हैं।

हैं। यदि हम तारों, सूर्य और पृथ्वी का मानचित्र पैमाने के अनुसार बनाना चाहें और उसमें हम पृथ्वी को सुई की नोक के बराबर बिंदु से निरूपित करें, अर्थात् पृथ्वी को १/१०० इंच व्यास के बिंदु से निरूपित करें, तो निकटतम तारा पृथ्वी से ६०० मील पर पड़ेगा !

अति दूरस्थ तारों की दूरियाँ—कुछ तारे हमें खूब चमकीले दिखायी पड़ते हैं, अधिकांश बहुत मंद। यह क्यों ? निसंदेह तारों में कुछ अपेक्षाकृत हमारे निकट हैं, अधिकांश उनसे कई गुनी अधिक दूरी पर हैं। परंतु यह भी तो हो सकता है कि सब तारे एक ही वास्तविक चमक के न हों। दूसरे शब्दों में, यदि सब तारे एक ही दूरी पर खड़े कर दिये जायें तो क्या वे सब एक ही चमक के होंगे ? कदापि नहीं; कुछ बहुत चमकीले होंगे, कुछ कम, कुछ इतने मंद प्रकाश के कि वे कठिनाई से दिखाई पड़ेंगे। परंतु तारों के रंग से उनकी वास्तविक चमक का बहुत-कुछ पता चल जाता है, विशेष कर जब दूरदर्शक पर त्रिपार्श्व लगा कर उनके प्रकाश के वर्णपट (स्पेक्ट्रम) की सूक्ष्म जाँच की जाती है। अब यदि वर्णपट की सूक्ष्म जाँच से यह निश्चित हो कि दो तारे एक ही वास्तविक चमक के हैं तो अवश्य ही वे प्रत्यक्षतः कम या अधिक चमकीले केवल न्यूनाधिक दूरी के कारण होंगे। यदि इन दो तारों में से एक की दूरी त्रिकोणमितीय रीति से नाप ली गयी है तो मंद प्रकाश के तारे की दूरी तुरंत ज्ञात हो जायगी, क्योंकि भौतिक विज्ञान बताता है कि दूरी दुगुनी होने पर चमक चौथाई हो जाती है, दूरी तिगुनी होने पर चमक नवमांश ही रह जाती है, इत्यादि।

इस प्रकार मंद तारों में से अधिकांश की दूरी का अनुमान कर लिया गया है।

प्रकाश-वर्ष—तारों की दूरियाँ बताने के लिए मील बहुत छोटा पड़ता है। इसलिए बड़ी दूरियों के लिए बहुधा प्रकाश-वर्ष का प्रयोग किया जाता है। प्रकाश-वर्ष वह दूरी है, जिसे प्रकाश एक वर्ष में तय करता है। भौतिक विज्ञान के विशेषज्ञों ने प्रकाश के वेग को नापा है और उन्हें पता चला है कि प्रकाश एक सेकंड में लगभग १,८६,००० मील चलता है। इसलिए एक प्रकाश-वर्ष लगभग

$$१८६,००० \times ६० \times ६० \times २४ \times ३६५ \text{ मील}$$

अर्थात् लगभग ७×१०^{१२} मील के बराबर है। ध्रुवतारा हमसे लगभग ४७ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है।

नीहारिकाओं की दूरियाँ—बहुत दिनों से ज्योतिषी अनुमान करते थे कि नीहारिकाएँ हम से बहुत दूर हैं; परंतु कितनी दूर हैं इसके नापने की कोई रीति उन्हें नहीं मिल रही थी। ज्योतिषियों ने देखा था कि कुछ तारों की चमक स्थिर नहीं रहती, घटा-बढ़ा करती है। चमक घटने-बढ़ने के भी कई नियम हैं। कुछ की चमक तो इस प्रकार घटती-बढ़ती है कि स्पष्ट जान पड़ता है कि उनके चारों ओर कम प्रकाश का कोई दूसरा पिंड चक्कर लगा रहा है और जब यह पिंड तारे और हमारे बीच में आ जाता है तब तारा अंशतः छिप जाता है और इसलिए तारे का प्रकाश घट जाता है। परंतु तारों की एक जाति ऐसी है कि उनका प्रकाश विशेष रूप से घटता-बढ़ता है और उनको पहचानने में कोई भूल नहीं हो सकती। इनको सेफीइड (Cepheid) तारे कहते हैं, क्योंकि ऐसे तारों में प्रमुख एक तारा सेफियस तारा-मंडल का है। आकाश में सेफीइड

तारे बहुत से हैं और उनमें कई ऐसे भी हैं, जिनकी दूरी और निजी चमक ज्ञात है। इन तारों के अध्ययन से पता चला है कि चमक घटने-बढ़ने के आवर्तकाल तथा वास्तविक चमक में एक अटूट संबंध है। बस हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है; इससे नीहारिकाओं की दूरी जान ली जा सकती है। कारण यह है कि अधिकांश नीहारिकाओं में सेफीइड तारे भी हैं। बहुत से फोटोग्राफ लेने पर और घनत्व नापने पर इन तारों के प्रकाश के घटने-बढ़ने का नियम सुगमता से जाना जा सकता है। इस प्रकार उनके प्रकाश-परिवर्तन का आवर्तकाल ठीक-ठीक ज्ञात हो जाता है। तब आवर्तकाल से उनकी वास्तविक चमक की और वास्तविक चमक से उनकी दूरी की गणना सरलता से की जा सकती है, चाहे तारा कितना ही फीका क्यों न हो। केवल एक धोखा हो सकता है। कहीं कोई काली नीहारिका या प्रकाश सोखनेवाली अन्य गैस या धूलि तो बीच में नहीं है, जिसके कारण तारा मंद प्रकाश का लगता है? इन बातों का विवेचन कर लेने पर, और तर्कों से सिद्ध कर लेने पर कि प्रकाश शोषक बीच में नहीं है और है तो कितना प्रकाश उसके कारण मिट गया है, सेफीइड तारों की दूरी बड़ी सुगमता से निकल आती है। तब उन नीहारिकाओं की दूरियाँ ज्ञात हो जाती है, जिन से वे तारे संबंधित हैं। इस प्रकार पता चला है कि बड़ा मैगिलन-मेघ लगभग ७५,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है, छोटा मैगिलन-मेघ लगभग ८४,००० प्रकाश-वर्ष पर है। छोटी दिखायी पड़नेवाली सर्पिल नीहारिकाएँ इनसे लाखों गुनी अधिक दूरी पर हैं। इन दूरियों की गणना सरल है; परंतु उनकी कल्पना हमारी अनुभूति के परे है।

वर्णपट—काँच के त्रिपार्श्व द्वारा देखने पर मोमबत्ती की लौ, या अन्य प्रकाशमान वस्तु, कई रंगों की दिखाई देती है। शीशे का त्रिपार्श्व वही है जिसे शीशे की कलम भी लोग कहते हैं; पुराने ढंग की झाड़-फानूस में शोभा के लिए बहुत-सी कलमें लटकायी जाती थीं। इनके तीनों पहल समतल होते हैं और तीनों कोर एक दूसरे के समानांतर होते हैं। इसी प्रकार का त्रिपार्श्व, परंतु कम कोण का और काफी बड़ा, जिससे दूरदर्शक का ताल पूर्णतया ढक जाय, ताल के ऊपर लगा देने पर तारे का फोटोग्राफ विंदु-सरीखा न आकर पट्टी के समान आता है, जिसे वर्णपट (स्पेक्ट्रम) कहते हैं और इस वर्णपट की जाँच से बहुत-सी बातों का पता चलता है। यदि साधारण फोटोग्राफ लेने के बदले रंगीन फोटोग्राफ लिया जाय या वर्णपट को आँख से देखा जाय तो वर्णपट रंगीन दिखायी पड़ेगा। इन रंगों का अर्थ समझने के लिए तारे के प्रकाश के बदले पहले हम मोमबत्ती के प्रकाश का अध्ययन करेंगे।

मान लीजिये, किसी प्रबंध से मोमबत्ती के एक विंदु से आये प्रकाश को त्रिपार्श्व पर पड़ने दिया जाता है और त्रिपार्श्व को पार करने पर बने वर्णपट की हम जाँच करते हैं। हम देखेंगे कि वर्णपट के एक सिरे पर बैंगनी रंग है और दूसरे सिरे पर लाल रंग है। इन दोनों के बीच असंख्य रंग हैं, जिन्हें हम मोटे हिसाब से सात रंगों में विभक्त कर सकते हैं। उनके नाम क्रमानुसार ये हैं—

बैंगनी, गहरा नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी, लाल।

इस वर्णपट में कहीं कोई काली रेखा न दिखायी पड़ेगी। परंतु यदि हम किसी गैस को तप्त करके प्रकाश उत्पन्न करें और उसे त्रिपार्श्व द्वारा देखें तो दूसरे ही प्रकार का वर्णपट हमें

प्राप्त होगा। उदाहरणतः यदि हम सोडियम नामक तत्व को तप्त करें या स्पिरिट की लौ में थोड़ा साधारण नमक डाल दें (जो वस्तुतः सोडियम क्लोराइड है) तो वर्णपट में केवल दो पीली रेखाएँ दिखायी पड़ेंगी। प्रत्येक तत्व का वर्णपट निराला ही होता है, जिससे पता चल जाता है कि किस तत्व के होने से अमुक वर्णपट उत्पन्न हुआ है। साधारण निपीड (प्रेशर) पर तप्त गैसों के वर्णपट में साधारणतः चमकीली रेखाएँ रहती हैं।

फिर, यदि मोमवत्ती का प्रकाश तप्त सोडियम वाष्प द्वारा होकर आवे जिसका तापक्रम मोमवत्ती के तापक्रम से कम हो तो वर्णपट में अन्य सब रंग तो वर्तमान रहेंगे, केवल वही प्रकाश नहीं रहेगा जो सोडियम-प्रकाश से हमें मिलता है; अर्थात् रंगीन वर्णपट हमें अवश्य मिलेगा, परन्तु उसमें उस स्थान पर दो काली रेखाएँ दिखायी देंगी जहाँ केवल सोडियम-प्रकाश से दो पीली रेखाएँ दिखायी पड़ती हैं। जब कभी श्वेत तप्त पिंड से चला प्रकाश अपेक्षाकृत ठंडे गैसों से होकर आता है तो काली रेखाओंवाला वर्णपट उत्पन्न होता है।

सूर्य के प्रकाश के वर्णपट में बहुत-सी काली रेखाएँ दिखायी पडती हैं। इन काली रेखाओं के स्थानों को ज्ञात गैसों की रेखाओं के स्थानों से तुलना करने पर हमें पता चलता है कि सूर्य के बाहरी वातावरण में कौन-कौन सी गैसें हैं। उदाहरणतः, वर्णपट के पीले भाग में हमें वे दो काली रेखाएँ भी दिखायी पड़ती हैं, जो सोडियम वाष्प से ही उत्पन्न होती हैं। इससे पता चलता है कि सूर्य का भीतरी भाग अत्यंत तप्त है; वहाँ से श्वेत प्रकाश चारो ओर बिखरता है; सूर्य की बाहरी तह उतनी तप्त नहीं है; और उसमें सोडियम वाष्प अवश्य है। इसीलिए हमें वर्णपट में दो काली रेखाएँ वहाँ दिखायी पड़ती हैं जहाँ तप्त सोडियम वाष्प के वर्णपट में दो चमकीली पीली रेखाएँ दिखायी पड़ती हैं।

स्पष्ट है कि वर्णपट की जाँच से, जिसे वर्णपट-विश्लेषण कहते हैं, हम यह बता सकते हैं कि सूर्य की रासायनिक संरचना कैसी है। इसी प्रकार हम तारों की रासायनिक संरचना के विषय में भी बहुत-सी बातें जान सकते हैं।

यदि प्रकाश का उद्गम स्थान स्थिर रहने के बदले वेग से हमारी ओर आ रहा है, या हमसे दूर भाग रहा है, तो रेखाओं के स्थान में थोड़ा सा अंतर पड़ जाता है। भौतिक विज्ञान का वह सिद्धान्त जिसे डॉप्लर के नाम पर लोग डॉप्लर-सिद्धान्त कहते हैं, यह बताता है कि कितने वेग के कारण वर्णपट की रेखाओं में कितना अंतर पड़ता है। इसलिए वर्णपट में रेखाओं की स्थितियों के अंतर को नाप कर हम बता सकते हैं कि उद्गम स्थान कितने मील प्रति घंटे के वेग से हमारी ओर आ रहा है या हम से दूर जा रहा है। उदाहरणतः, सूर्य अपनी धुरी पर घूमता रहता है। इसलिए इसके बिम्ब का एक किनारा हमारी ओर आता रहता है और दूसरा किनारा हमसे दूर जाता रहता है। दूरदर्शक के ताल से सूर्य का प्रतिबिंब बनाकर और उसके दाहिने और बायें किनारों के प्रकाशों का अलग-अलग वर्णपट बनाकर तुलना करने से स्पष्ट पता चलता है कि सूर्य किस वेग से अपनी धुरी पर नाच रहा है।

इसके अतिरिक्त वर्णपट से उद्गमस्थान के तापक्रम का भी पता चलता है। किसी वस्तु को यदि थोड़ा ही गरम किया जाता है तो वह लाल हो कर ही रह जाता है; यदि अधिक गरम किया जाता है तो उसका प्रकाश लाल के बदले पीला हो जाता है। पिंड के अधिक तप्त होने पर प्रकाश श्वेत हो जाता है। और भी अधिक तप्त हो जाने पर प्रकाश निलछौंह हो जाता है। इसलिए वर्णपट के फोटोग्राफ में यह देख कर कि घनत्व किस भाग में महत्तम है, उद्गम स्थान के तापक्रम का भी अनुमान किया जा सकता है।

हम देखते हैं कि वर्णविश्लेषण अत्यंत महत्वपूर्ण है और इससे हमें कई बातें ज्ञात हो सकती हैं।

फोटोग्राफी—इन दिनों वैज्ञानिक अनुसंधानों में फोटोग्राफी का बहुत प्रयोग किया जाता है। इसके कई कारण हैं। संसार में बड़े दूरदर्शक इने-गिने हैं। उनका समय बहुमूल्य है। चटपट फोटोग्राफ लेकर उसे सुचित से निरीक्षण करने के बदले दूरदर्शक में ही आँख लगाने से दूरदर्शक का बहुत-सा अमूल्य समय नष्ट होता है। फिर फोटोग्राफ को सूक्ष्मदर्शक यंत्र से नापने में जो सुविधा है वह सुविधा आँख ऊपर उठाये दूरदर्शक के नीचे पड़े रह कर काम करने में नहीं प्राप्त हो सकती। अंत में, फोटोग्राफी के प्लेट में एक विशेष गुण है जो हमारी आँखों में नहीं है। यदि आकाशीय पिंड का प्रकाश इतना मंद हो कि बड़े दूरदर्शक में भी वह हमें न दिखायी पड़े, तो भी फोटोग्राफों में वह हमें दिखायी दे जा सकता है। कारण यह है कि फोटो के प्लेट पर मंद प्रकाश का परिणाम संचित होता चलता है। यदि प्रकाशदर्शन (अर्थात् एक्सपोज़र) पर्याप्त दिया जाय तो फोटोग्राफों में बहुत-से मंद प्रकाशवाले ब्योरे देखे जा सकते हैं, जो अन्य किसी रीति से हमें नहीं दिखायी दे सकते। नीहारिकाओं के अध्ययन में फोटो के प्लेटों का यह गुण विशेष उपयोगी है, क्योंकि दूरस्थ नीहारिकायें सब अत्यंत मंद प्रकाश की हैं।

निजी गति—तारे साधारणतः स्थिर तारे (fixed stars) कहलाते हैं, क्योंकि पचीस-पचास वर्ष में उनका स्थिति-परिवर्तन उपेक्षणीय होता है। परन्तु विश्व की संरचना की खोज में तारों की स्थिति-परिवर्तन महत्वपूर्ण है। यदि हम तारों का फोटोग्राफ आज लें और उस फोटोग्राफ की तुलना उसी यंत्र से पचास वर्ष पहले लिये गये फोटोग्राफ से सूक्ष्मतापूर्वक करें, तो हम देखेंगे कि कुछ तारे, जो पृष्ठभूमि के मंद तारों से साधारणतः अधिक चटक हैं, अपने पहले-वाले स्थान से वस्तुतः हट गये हैं। यह नाप कर कि तारा कितना हटा है और यह जानने पर कि तारे की दूरी कितनी है, हम सरल गणना द्वारा जान सकते हैं कि हमारे देखने की दिशा से समकोण बनाती हुई दिशा में तारे का वेग क्या है। फिर, देखने की दिशा में हम तारे का वेग डॉपलर-सिद्धान्त से प्राप्त कर ही सकते हैं। इस प्रकार हमें पूर्ण ज्ञान हो जाता है कि तारा वस्तुतः किस दिशा में और किस वेग से जा रहा है।

तौल—गतिविज्ञान में एक सूत्र है, जिससे यह ज्ञात रहने पर कि दो तारे एक दूसरे से कितनी दूरी पर हैं और उनमें से एक तारा दूसरे तारे की परिक्रमा कितने वर्षों में कर

लेता है, हम दोनों तारों की सम्मिलित तौल बता सकते हैं। हरशेल ने (१७३८-१८२२) अपने वेधों से पता लगाया था कि कई तारा-युग्मों में दोनों तारे वस्तुतः एक दूसरे से संबंधित हैं। एक तारा दूसरे की चारों ओर परिक्रमा करता है। कुछ युग्म अवश्य ऐसे हैं कि उनमें से एक तारा पृथ्वी से बहुत दूर है और दूसरा बहुत निकट, केवल प्रायः एक दिशा में होने के कारण वे तारा-युग्म से जान पड़ते हैं। तो भी असली तारा-युग्म आकाश में बहुत से हैं और उनमें जिस किसी की भी दूरी नापी जा सकी है या अन्य किसी रीति से उनकी दूरी का अनुमान किया गया है, उसकी तौल का पता पूर्वोक्त गतिवैज्ञानिक सूत्र से चल गया है।

नाप—कुछ तारों का व्यास भी नापा जा सका है। अधिकांश तारे हमसे बहुत दूर हैं; साथ ही उनका व्यास भी पर्याप्त बड़ा नहीं है। इसलिए उनका कोणीय व्यास बड़े-से-बड़े दूरदर्शक में भी शून्य ही जान पड़ता है। सिद्धान्त और तर्क से हम जानते हैं कि कुछ तारे कम घनत्व के और बहुत बड़े व्यास के होते हैं। उनको हम दैत्य तारे (जायंट स्टार्स) कहते हैं। कुछ तारे इनसे भी बड़े होते हैं। उन्हें अतिदैत्य तारे (सूपर-जायंट स्टार्स) कहते हैं। कुछ तारे बहुत अधिक घनत्व के और कम व्यास के होते हैं। इनको बौना या वामन तारा (ड्वार्फ स्टार्स) कहते हैं। हमारा सूर्य वामन तारा है। ज्योतिषियों का अनुमान यह है कि तारा पहले कम घनत्व का और दूर तक विस्तृत रहता है। फिर अपने ही आकर्षण से सिमटते-सिमटते उसका व्यास कम होता जाता है और तापक्रम बढ़ता जाता है। दैत्य तारे साधारणतः कुछ लाल होते हैं। तारों में वे बच्चे हैं। अधिक आयु होने पर वे अधिक ठस, व्यास में छोटे और तापक्रम में अधिक तप्त होते जाते हैं, जिससे उनका प्रकाश श्वेत होता जाता है। घनत्व बढ़ते-बढ़ते एक सीमा ऐसी आ जाती है जब सब अणु एक दूसरे से प्रायः सट जाते हैं और अधिक सटने के लिए गुंजायश नहीं रहती। फिर वे धीरे-धीरे ठंडे हो चलते हैं। अंत में वे प्रकाशरहित हो जाते हैं।

दैत्य और बौने तारों का संक्षिप्त वर्णन यहाँ इसलिए कर दिया गया है कि आगामी अध्यायों में इन शब्दों का प्रयोग किया जायगा।

श्रेणी—तारों की चमक बताने की यह रीति है कि उनकी श्रेणी (मैगनीट्यूड) बता दी जाय। प्राचीन ज्योतिषियों ने सबसे चमकीले तारों को प्रथम श्रेणी में रखा था और उन मंद तारों को जो कोरी आँख से दिखाई भर पड़ जाते हैं, छठी श्रेणी में रखा था। अन्य तारों को, उनकी चमक के अनुसार, द्वितीय, तृतीय आदि श्रेणियों में रखा था। आधुनिक ज्योतिषियों ने इस वर्गीकरण को अधिक परिष्कृत कर लिया है। नवीन प्रथा के अनुसार, अधिकांश चमकीले तारों की श्रेणियाँ प्रायः पहले जैसी रह गयी हैं, परंतु अब दशमलव लगी श्रेणियों का भी अर्थ निकल सकता है। नवीन परिभाषा एक सूत्र के अनुसार दी जाती है, जिसके उल्लेख की यहाँ आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि श्रेणी में एक की कमी होने से चमक लगभग ढाई गुनी बढ़ती है (वस्तुतः २·५१२ गुनी बढ़ती है)। इस प्रकार नवीन परिभाषा के अनुसार श्रेणी १·० का तारा श्रेणी २·० के तारे से ढाई गुना अधिक चमकीला है। रोहिणी (एल्डिबरन) नामक तारा प्रायः ठीक प्रथम श्रेणी का है। अगस्त (कैपेला) की श्रेणी

०·२ है और लुब्धक (सिरियस) की, जो आकाश का सबसे अधिक चमकीला तारा है, श्रेणी –१·६ है। माउंट विलसन के सौ इंचवाले दूरदर्शक से एक्कीसवी श्रेणी तक के तारों का फोटोग्राफ़ उतर आता है।

इतिहास—प्राचीन यूनानी ज्योतिषी हिपार्कस (लगभग १९०-१२५ ई० पू०) ने प्रथम तारा-सूची बनायी थी। उसमें भी दो ज्योतिमय आकाशीय धब्बों का उल्लेख है और टॉलमी (लगभग १३८ ई०) ने अपने अलमाजेस्ट नामक पुस्तक में पाँच मेघिल तारों को सम्मिलित किया था, परंतु ये वस्तुएँ वास्तविक नीहारिकाएँ न थी। दूरदर्शक से देखते ही स्पष्ट हो जाता है कि वे तारा-पुंज हैं। हाँ, अरब के अलसूफ़ी (९०३-९८६) ने अपनी 'स्थिर तारों की पुस्तक' में देवयानी नक्षत्र-मंडलवाली नीहारिका का उल्लेख किया है। १५वी शताब्दी में पोर्चुगल के नाविक दक्षिण जाया करते थे और वे उन मेघों को जानते थे, जिनका नाम अब मैगिलन-मेघ पड़ा है। गैलीलियो (१५६४-१६४२) ने दूरदर्शक का आविष्कार १६०९ में किया और उसके कुछ ही वर्ष पश्चात् नीहारिकाओं का पता एक-एक करके चलने लगा। हायगेन्स (१६२९-१६९५) ने मृगव्याध (ओरायन) नीहारिका का प्रथम वर्णन और चित्र सन १६५६ ई० में दिया। १७१५ में न्यूटन के मित्र हैली (१६५६-१७४२) ने संभवतः प्रथम नीहारिका-सूची बनायी। हैली वही ज्योतिषी था जिसके नाम से हैली पुच्छल तारा प्रसिद्ध है। परंतु हैली की सूची में कुल ६ 'प्रकाशमय धब्बे और चकतियों' की चर्चा है। इसके बाद कई सूचियाँ छपी और प्रत्येक में पहले से अधिक नीहारिकाओ का उल्लेख रहता था। फ्रांसनिवासी चार्ल्स मेसिये ने (१७३०-१८१७) अपनी सूची का, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, अंतिम संस्करण १७८१ में प्रकाशित किया; इसमें १०३ नीहारिकाएँ थी। विलियम हरशेल (१७३८-१८२२) ने यूरेनस का आविष्कार किया था और फिर उसके लड़के जॉन हरशेल (१७९२-१८७१) ने बड़े-बड़े दूरदर्शको से आकाश की खोज की। बड़े हरशेल ने अपने हाथ के बने दूरदर्शक से लगभग ढाई हजार नीहारिकाओं का पता लगाया। वह मृगव्याध (ओरायन) नीहारिका से इतना आश्चर्यचकित और मोहित हो गया था कि उसने अपने जीवन का अधिकांश भाग नीहारिकाओ और युग्म-तारो की खोज में व्यतीत किया। छोटे हरशेल ने भी स्वयं अपने हाथ से १८ इंच का बढिया दूरदर्शक बनाया और उससे लगभग ५०० नयी नीहारिकाओ का पता लगाया। इंगलैंड से आकाश का दक्षिणी गोलार्ध समूचा दिखायी नही पड़ता। इसलिए दक्षिणी अफ्रीका में जाकर उसने दक्षिणी नीहारिकाओं का निरीक्षण किया। मैगिलन-मेघों के सूक्ष्म निरीक्षण के अतिरिक्त उसने लगभग १७०० दक्षिणी नीहारिकाओ की सूची प्रकाशित की। इस सूची में कई नीहारिकाओ के चित्र भी खीचे गये थे। इंगलैंड लौटकर उसने अपने देखे और पिता द्वारा आविष्कृत नीहारिकाओं की विस्तृत सूची १८६४ में छपाई, जिसमें पाँच हजार नीहारिकाओं का उल्लेख था। इसीके आधार पर १८८८ में ड्रायर ने अपनी सूची 'न्यू जेनरल कैटलग ऑफ़ नेब्युली' प्रकाशित की, जिसका उल्लेख आज भी एन० जी० सी० (N.G.C.) के संक्षिप्त नाम से किया जाता है। इसके दो परिशिष्ट क्रमानुसार १८९५ में और १९०८ में

छपे जो 'इंडेक्स कैटलग' (आई० सी०, I. C.) के नाम से प्रसिद्ध है। इन तीनों सूचियों में कुल मिला कर १३,००० से भी अधिक नीहारिकाओं का समावेश है।

नीहारिकाओं की फोटोग्राफी का इतिहास—फोटोग्राफी के आविष्कार के बाद लोगो ने आकाशीय पिंडों का फोटोग्राफ लेना चाहा। सफलता कई लोगों को प्रायः एक साथ ही मिली। अमरीका के हेनरी ड्रेपर (१८३७-८२) ने १८८० में मृगव्याध (ओरायन) नीहारिका का अच्छा फोटोग्राफ खींचा। फ्रांस में जैनसन (१८२४-१९०७) ने १८८१ में और कुछ वर्ष बाद इंगलैंड में कॉमन (१८४१-१९०३) ने तथा आइज़क रॉबर्ट्स (१८२९-१९०४) ने बहुत अच्छे चित्र नीहारिकाओं के खींचे। पॉल हेनरी और प्रॉस्पर हेनरी दो भाई थे, जिन्होंने फ्रांस में किचपिचिया (कृत्तिका) तारा-पुंज का फोटोग्राफ खींचा और दिखाया कि ये तारे वस्तुतः अति क्षीण नीहारिका में उलझे हुये हैं। परंतु अभी तक फोटोग्राफ साधारण दूरदर्शकों से खींचे जाते थे। १८८९ ई० में अमरीका की प्रसिद्ध लिक-वेधशाला के संचालक बारनार्ड ने मनुष्य-चित्रण के लिए बने बड़े छिद्र (अपर्चर) वाले पोर्ट्रेट लेंज़ों से नीहारिकाओं के फोटोग्राफ लिये। तब पता चला कि बहुत-से तारे अत्यंत क्षीण नीहारिकाओं से घिरे हुये हैं। उसने दिखाया कि किचपिचिया के सभी तारे अत्यंत झीनी नीहारिका के बीच में हैं। बारनार्ड ने कई काली नीहारिकाओं का भी पता लगाया और प्रमाणित किया कि आकाश के कई स्थलों में हलकी धूलि हैं, जिसके कारण वहाँ के तारे कुछ धूमिल दिखायी पड़ते हैं। ऑस्ट्रेलिया के रसेल ने १८९० ई० में बारनार्ड की रीति से दक्षिणी नीहारिकाओं के फोटोग्राफ लिये और जर्मनी के मैक्स वोल्फ ने १८९१ ई० में छोटी नीहारिकाओं की सूची बनानी विधिवत् आरंभ कर दी।

१८९९ ई० में लिक-वेधशाला के ३६ इंचवाले दर्पणयुक्त दूरदर्शक से सर्पिलाकार नीहारिकाओं का फोटोग्राफ लेना और उनका ब्योरेवार अनुसंधान करना आरंभ किया गया। उसके पहले कई ज्योतिषियों ने कुछ सर्पिल नीहारिकाओं को देखा था और उनका वर्णन किया था; परन्तु कीलर के काम से पता चला कि अधिकांश नीहारिकाएँ सर्पिलाकार हैं। सन् १९०० ई० में उसने अनुमान किया कि उसके दूरदर्शक से कम-से-कम सवा लाख सर्पिल नीहारिकाओं का पता चल सकता है; परन्तु उसी दूरदर्शक से अधिक अनुभव के बाद कर्टिस ने १९१९ ई० में अनुमान किया कि आकाशगंगा के क्षेत्र को छोड़ आकाश के अन्य भागों में कम से कम १० लाख नीहारिकाएँ हैं। आधुनिक समय में अमरीका की हारवर्ड-कालेज-वेधशाला में नीहारिकाओं पर खूब काम हुआ है। दक्षिणी नीहारिकाएँ छूट न जायँ, इस उद्देश्य से इस कालेज ने १९०० ई० में अरेक्विपा (पेरू, दक्षिणी अमरीका) में और फिर १९२७ ई० में ब्लोमफान्टाइन (दक्षिणी अफरीका) में निजी वेधशालाएँ बनवाई। विशेष दूरदर्शक केवल तारों और नीहारिकाओं की फोटोग्राफी के लिए बनवाया, जिसमें प्रसिद्ध ब्रूस दूरदर्शक भी था। इसके ताल का व्यास २४ इंच है और एक साथ ही काफी बड़े क्षेत्र का फोटोग्राफ लेता है। स्वयं हारवर्ड में उपयुक्त यंत्र तो था ही। सन् १९३० में यहाँ के संचालक हारलो शेपली ने अठारहवीं श्रेणी तक की सब नीहारिकाओं का फोटोग्राफ खिंचवाया और इस प्रकार हजारों नई नीहारिकाओं का पता चला।

इधर यह काम हो ही रहा था, उधर दूसरों ने अधिकाधिक बड़े दूरदर्शक बनवाने की सोची। यह देखकर कि लिक-वेधशाला के ३६ इंचवाले दूरदर्शक से बहुत अच्छा काम हो सका है, माउंट विलसन के जी० डब्ल्यू० रिची (Ritchey) ने ६० इंच व्यास का दर्पणयुक्त दूरदर्शक बनवाया और कई वर्ष तक (१९०८-१७) उसने इससे नीहारिकाओं के फोटोग्राफ लिये। रिची के फोटोग्राफ बहुत तीक्ष्ण उतरते थे और कई सर्पिलों की तारामय रचना उसके चित्रों से स्पष्ट हुई। वहां के संचालक हेल को अनुभव हुआ कि अधिक बड़े दूरदर्शक से अधिक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए उसने १०० इंच व्यास के दूरदर्शक की योजना की। इसे सन १९१७ ई० में माउंट विलसन पर स्थापित किया गया और तब से आज तक इस यंत्र से काम हो रहा है। हेल ने शीघ्र अनुभव किया कि और भी बड़ा दूरदर्शक हो तो अधिक अच्छा होगा। बहुत पूछ-ताछ और खोज के बाद निश्चय किया गया कि २०० इंच व्यास का दूरदर्शक बन सकता है। सन १९२८ ई० से ही इसके बनाने की योजना होने लगी; परन्तु द्वितीय विश्वव्यापी युद्ध के कारण इसका काम स्थगित रहा। अब यह बन गया है और आरोपित कर दिया गया है। इसमें अंतिम सुधार अभी हो ही रहे हैं; परन्तु पूर्ण आशा है कि निकट भविष्य में इससे कई नवीन बातों का पता चलेगा।

इस अध्याय में हमने देख लिया कि ज्योतिषी किस प्रकार नीहारिकाओं का अध्ययन करता है, किस प्रकार उनकी दूरी ज्ञात करता है और किस प्रकार उनको नापता और तौलता है। आगामी अध्याय में सात निकटतम नीहारिकाओं का वर्णन किया जायगा।

द्वितीय अध्याय

निकटतम नीहारिकाएँ

मैगिलन मेघ—पिछले अध्याय में हम देख चुके है कि चार नीहारिकाएँ औरों की अपेक्षा अधिक निकट हैं। हम इस अध्याय में इन्ही नीहारिकाओं पर विशेष विचार करेंगे। इन चारों में सबसे बडा मैगिलन मेघ जान पड़ता है। वह स्वर्ण-मत्स्य (डोरेडो) तारामडल में है। छोटा मैगिलन-मेघ टूकन तारामंडल में है। दोनों ही मेघो के कुछ भाग इन तारामंडलों के बाहर तक पहुँच जाते हैं। कोरी आँख से, या छोटे दूरदर्शक से, देखने पर या साधारण प्रकाशदर्शन (एक्सपोजर) देकर फोटोग्राफ खीचने पर, ये मेघ विशेष बड़े नही दिखायी पड़ते। छोटे मेघ का व्यास चार अंश से कुछ कम ही है। यह स्मरण रखने पर कि चंद्रमा का व्यास लगभग आधा अंश है, हम चार अंश का अनुमान सुगमता से कर सकते हैं। बड़े मेघ का व्यास आठ अंश से कुछ कम है। दोनो की आकृति अनियमित है, अर्थात वे न तो वृत्ताकार और न दीर्घवृत्ताकार हैं। तारों का घनत्व भी उनमें सब जगह एक-सा नही है। बीसवी शताब्दी के आरम्भ में भी ज्योतिषियों ने इन मेघो की सरचना का भेद नही जान पाया था। कितने तारे, कितनी नीहारिकाएँ और कितने तारापुंज इन मेघो में अमुक दूरदर्शक से दिखायी पड़ते है, बस इतने की ही खोज हो पायी थी।

जब तक हारवर्ड वेधशाला ने दक्षिणी गोलार्ध में अपनी शाखा नही खोल पायी थी तब तक स्थिति ऐसी ही रही। वहाँ शाखा खुलने पर, और न्यूयॉर्क की मिस कैथरिन ब्रूस से पर्याप्त धन दान में मिलने पर, स्थिति बदलने लगी। मिस ब्रूस के दान से ब्रूस दूरदर्शक बना, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। अपने समय में ब्रूस-दूरदर्शक बड़ा ही शक्तिशाली था। इसके ताल का व्यास २४ इंच था। एक घंटे के प्रकाशदर्शन से इस यंत्र से सोलहवी श्रेणी तक के तारो का फोटोग्राफ उतर आता था और एक बार में ही आकाश के उतने क्षेत्र का फोटोग्राफ उतरता था, जितना सप्तर्षि तारामडल के प्रथम चार तारों के बीच स्थान है। साधारण दूरदर्शकों से तो समूचे चंद्रमा का भी फोटोग्राफ नही उतर पाता है। ब्रूस-दूरदर्शक से सारे आकाश के फोटोग्राफ लेने की योजना की गयी थी। इसीलिए मैगिलन-मेघो की पारी आने में कई वर्ष लगे। पहले तो इतना ही पता लगा कि इन मेघो में हजारो तारे और बहुत से तारापुंज तथा नीहारिकाएँ हैं। परन्तु महत्वपूर्ण नवीन बातो का पता तब लगा जब फोटोग्राफों की जाँच मिस लीविट ने अमरीका के केम्ब्रिज शहर में की। मिस लीविट ने देखा कि इन मेघों में बहुत-से तारे ऐसे हैं, जिनकी चमक प्रत्येक प्लेट पर एक-सी नही है। उन्होने बड़ी सावधानी से नापना और उनका लेखा रखना आरम्भ किया। उस समय सेफ़ीइड तारो की चमक और चक्रकाल में संबंध रहने का पता नही था। इसलिए मैगिलन-मेघो की दूरी का भी कोई पता किसी को नही था। इसका भी किसी को अनुमान नही था कि यह सब नाप-जोख किस काम आयगा। परन्तु १९०६ ई० में मिस लीविट ने बड़े मेघ के ८०८ परिवर्तनशील तारो की सूची और छोटे मेघ के ९६९ परि-

वर्तनशील तारों की सूची प्रकाशित की। इन सूचियों से पता चला कि ऐसे तारों की महत्तम और न्यूनतम चमकों का अनुपात सभी के लिए उतना ही —लगभग ढाई गुना—होता है, चाहे तारा खूब चमकीला हो, चाहे कम।

इन परिवर्तनशील तारों के अतिरिक्त मेघों में प्रायः सभी अन्य प्रकार के तारे पाये गये, लाल दैत्य भी हैं और नीले बौने भी। इनके अतिरिक्त ऐसे तारे भी इन मेघों में थे, जो अपने विशेष वर्णपट के कारण तुरन्त पहचान लिये जा सकते थे; परन्तु जो आकाशगंगा को छोड़ आकाश के अन्य भागों में नहीं देखे गये थे। इन बातों से सन्देह होने लगा कि मेघों की संरचना संभवतः वैसी ही है जैसी हमारी मंदाकिनी-संस्था की।

मैगिलन-मेघों में कई नीहारिकाएँ भी हैं। सारे आकाश में इने-गिने चार-पाँच बड़ी गैसमय नीहारिकाओं में स्थान पाने योग्य वह नीहारिका भी है, जिसे पाश नीहारिका (अँग्रेज़ी में लूप नेब्युला) कहते हैं। यह बड़े मेघ में है और ३० स्वर्ण मत्स्य के नाम से प्रसिद्ध है। मेघों की दूरी अब हमें ज्ञात हो गयी है। इसलिए हम पाश नीहारिका की वास्तविक लंबाई-चौड़ाई का अनुमान कर सकते हैं। वस्तुतः यह नीहारिका बहुत बड़ी है। देखने में ओरायन नीहारिका हमको सबसे बड़ी जान पड़ती है; परन्तु ऐसा इसलिए है कि वह हमारे निकट है। यदि पाश नीहारिका को हम ओरायन नीहारिका की बगल में खड़ी कर सकते तो पाश नीहारिका के आगे ओरायन नीहारिका नन्ही-सी बच्ची से भी छोटी लगती। दोनों नीहारिकाओं का प्रकाश प्रायः एक-सा है। दोनों पीछेवाले तारों को छिपा देती है, उनमें कोई ऐसा द्रव्य है, संभवतः गर्द है, जो उनके पीछे स्थित तारों के प्रकाश को दबा देता है। दोनों नीहारिकाओं में अत्यन्त चमकीले तारे हैं और संभवतः दोनों इन्हीं तारों की विकिरण से ही शक्ति पाकर चमकती हैं; परन्तु पाश नीहारिका बहुत बड़ी है। उतनी बड़ी नीहारिका आकाशगंगा भर में कहीं नहीं है।

पाश नीहारिका के मध्य में सौ से कुछ अधिक अति दैत्य निलछौंह तारे हैं, जो नीहारिका के प्रकाश में छिपे हुए हैं। जब नीहारिका का फोटोग्राफ लाल प्रकाश छनवा कर लिया जाता है तब इन तारों का पता विशेष रूप से चलता है।

मैगिलन-मेघों में थोड़े-से गोलाकार तारापुंज भी हैं और बीसों किचपिचिया के समान साधारण तारापुंज हैं।

अगले अध्याय में पता चलेगा कि हमारी मंदाकिनी-संस्था स्वयं एक नीहारिका है और हम उसी के बीच में हैं। विश्व में असंख्य इसी प्रकार की नीहारिकाएँ हैं, जिनकी रचना हमारी मंदाकिनी-संस्था से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। ये नीहारिकाएँ एक दूसरे से दूर-दूर पर हैं और बीच में बहुत-सा प्रायः रिक्त स्थान है। किसी एक नीहारिका के सूक्ष्म अध्ययन से हम समस्त नीहारिकाओं के बारे में बहुत-सी बातें जान सकते हैं। परन्तु जिस नीहारिका में हम स्वयं स्थित हैं, अर्थात् हमारी मंदाकिनी-संस्था, वह अध्ययन के लिए विशेष उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इसके

तारे हमसे विभिन्न दूरियों पर हैं; कोई तारे वस्तुतः कम चमकीले होते हुये भी हमें बहुत चमकीले जान पड़ते हैं और यह केवल इसीलिए कि वह तारा हमारे बहुत पास है। मैगिलन-मेघों में यह कठिनाई नहीं है। प्रत्येक मेघ एक नीहारिका है और उसके तारे हमसे प्रायः एक ही दूरी पर हैं। अवश्य ही, ये मेघ स्वयं बहुत विस्तृत हैं; परन्तु उनकी लम्बाई-चौड़ाई उनकी पृथ्वी तक की दूरी की तुलना में प्रायः उपेक्षणीय है। अवश्य ही, हमारी आकाशगंगा के कुछ तारे भी मैगिलन-मेघों की दिशा में रहने के कारण भ्रमवश मेघों के सदस्य गिन लिये जाते होंगे; परन्तु ऐसे तारों की गिनती बहुत ही कम होगी। इसलिए जब हम मेघों के तारों का अध्ययन करते हैं तब तारों की वास्तविक चमकों के विषय में सच्ची बातें ज्ञात होती हैं। विशेषकर, हमें तारे के वर्णपट और उसकी वास्तविक चमक का सच्चा ज्ञान होता है।

मैगिलन-मेघों में संबंध—क्या दोनों मैगिलन मेघों में कोई संबंध है? छोटे मेघ की दूरी ८४,००० प्रकाश-वर्ष है और बड़े की ७५,००० प्रकाश-वर्ष। इस प्रकार दोनों की दूरियों में विशेष अंतर नहीं है। पृथ्वी और इन मेघों के बीच जो आकाशीय धूलि है उससे अवश्य ही ये मेघ आवश्यकता से कुछ अधिक मंद प्रकाश के दिखायी पड़ते हैं। यह धूलि कहीं गाढ़ी, कहीं हल्की हो सकती है और इसलिये दोनों मेघों की नयी दूरियाँ उतनी विश्वसनीय नहीं हैं जितनी वे आकाशीय धूलि के अभाव में होतीं।

मेघों के बीच आभासी कोणीय दूरी २१ अंश है। एक दूसरे से ये ३०,००० प्रकाश-वर्ष की दूरी पर हैं। यह तो एक के केन्द्र से दूसरे के केन्द्र तक की दूरी है। दोनों के छोरों के बीच की न्यूनतम दूरी बड़े मेघ के व्यास से कुछ कम है। वस्तुतः, जब बहुत अधिक प्रकाश-दर्शन देकर इन मेघों का फोटोग्राफ लिया जाता है, जिसमें मेघों के मद्धतम भागों का भी फोटोग्राफ लिया जाता है, तो ऐसा ज्ञात पड़ता है कि सम्भवतः दोनों मेघ संलग्न हैं। प्रत्येक मेघ में केन्द्र में घनी बस्ती है—वहाँ तारे अधिक घने हैं—और केन्द्र से दूर पर तारों की संख्या बहुत कम हो जाती है। यद्यपि अभी इसका पक्का प्रमाण नहीं मिला है, तो भी सम्भव जान पड़ता है कि दोनों मेघ एक ही समष्टि की दो घनी आबादियाँ हैं।

हमारी मंदाकिनी-मण्डल के सम्बन्ध से इन मेघों की दूरियाँ ८०,००० और ६०,००० प्रकाश-वर्ष हैं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि हमारी मंदाकिनी-मण्डल का गुरुत्वाकर्षण इन मेघों पर अवश्य ही काफी पड़ता होगा। परन्तु यह कहना कठिन है कि मेघ हमारी ओर आ रहे हैं अथवा हमसे दूर भाग रहे हैं या साथ-साथ चल रहे हैं। दृष्टिरेखा से सापेक्षिक गति तो इन मेघों की ज्ञात स्पष्ट है। परन्तु दृष्टिरेखा में बड़े और छोटे मेघ की गतियाँ क्रमानुसार १७० मील प्रति सेकंड और १०० मील प्रति सेकंड निकली हैं। परन्तु सूर्य और पृथ्वी की कोई स्वयं मंदाकिनी-मण्डल में [illegible] से कम नहीं है। [illegible] बादलों पर मेघों का वेग ० और ३० मील प्रति सेकंड निकलता है। परन्तु हमारी बातें बहुत [illegible] नहीं हो सकतीं। इसलिए निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि दोनों मेघ वस्तुतः ३० मील प्रति सेकंड के हिसाब से हमसे दूर जा रहे हैं या नहीं। [illegible]

बात क्या है। सौ, दो सौ, वर्ष बीतने पर दृष्टिरेखा से समकोणिक वेग का अच्छा पता चल सकेगा।

अभी तो इतने ही से संतोष करना पड़ेगा कि पृथ्वी अथवा सूर्य के हिसाब से मैगिलन-मेघ या तो चल नहीं रहे हैं या चल भी रहे हैं तो विशेष वेग से नहीं।

आकाशगंगा

ब्रह्मांड—अँग्रेजी में आकाशगंगा को दि मिल्की वे (दूधिया मार्ग) कहते हैं और गैलैक्सी शब्द का भी वही अर्थ है; परन्तु अब आधुनिक ज्योतिषी गैलैक्सी को दूसरे अर्थ में प्रयुक्त करने लगे हैं। जब कोई आकाशीय पिंड दूरदर्शक में प्रकाशमय धुएँ या बादल के समान दिखायी पड़ता है तब उसे नेब्युला कहते हैं; परन्तु यदि अध्ययन के पश्चात् पता चले कि वह बहुत से तारों का समूह है और संभवतः वह हमारी मंदाकिनी-संस्था के समान है तो उसे ज्योतिषी अब गैलैक्सी कहते हैं। उन्हें द्वीपविश्व (आइलेंड यूनिवर्स) भी कहते हैं। हम भी ऐसे समूहों को ब्रह्मांड या द्वीप-विश्व कहा करेंगे। ब्रह्मांड शब्द अत्यंत प्राचीन है; इस कारण इसके साथ अवश्य कई ऐसी कल्पनाएँ जुड़ी हैं जो आधुनिक विज्ञान के अनुसार निर्मूल हो सकती हैं; परन्तु इसका प्रधान अर्थ कि यह अंडे के समान सीमित है, इस शब्द को अत्यंत उपयुक्त बना देता है।

पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है, ग्रह भी सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं और केतु अर्थात् पुच्छलतारे भी। इन सबसे हमारा सौर-जगत बना है। परंतु तारों की परस्पर दूरियाँ इतनी अधिक हैं कि उन पर विचार करते समय हम पृथ्वी आदि को सूर्य से सटा हुआ मान सकते हैं। सूर्य के समान एक-खरब से भी अधिक तारे हैं, जिनको अब सम्मिलित रूप से मंदाकिनी-संस्था कहा जाता है। हमारी मंदाकिनी-संस्था बहुत बड़ी है, तो भी अनंत दूरी तक नहीं विस्तृत है। हम अपनी मंदाकिनी-संस्था को आकाशगंगा के रूप में देखते हैं। आकाशगंगा शब्द से हम उस प्रकाशमय मेखला को सूचित करते हैं, जो पृथ्वी-निवासियों को आकाश में दूधिया मार्ग के समान दिखायी पड़ती है। आकाश में जितने तारे दिखायी पड़ते हैं, वे प्रायः सभी अपनी मंदाकिनी-संस्था के हैं। तारों की दूरी और स्थिति को ध्यान में रखकर यदि हम इस मंदाकिनी-संस्था की मूर्ति पैमाने के अनुसार बनायें, तो हम देखेंगे कि हमारी मंदाकिनी-संस्था कुम्हार की चाक की तरह वृत्ताकार और चिपटी परंतु बीच में फूली हुई है। यदि कल्पना-शक्ति द्वारा हम इस संस्था से बाहर निकल जायें तो हमें मोटे हिसाब से यह संस्था सर्पिलाकार नीहारिका-जैसी दिखायी पड़ेगी। मंदाकिनी-संस्था के प्रायः मध्य धरातल में ही हमारा सूर्य है, परन्तु वह केंद्र पर नहीं है, केंद्र से किनारे की ओर प्रायः दो-तिहाई हटा हुआ है। मंदाकिनी-संस्था के बाहर चारों ओर बहुत दूर तक रिक्त स्थान है और तब एक दूसरे से दूर-दूर पर स्थित अन्य संस्थाएँ हैं। दूरदर्शकों से हमें अपनी मंदाकिनी-संस्था की तरह ही कई अरब संस्थाओं का पता चला है, जो एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पर हैं। इन्हें भी अब ब्रह्मांड (अंग्रेजी में गैलैक्सी) या द्वीप-विश्व (अंग्रेजी में आइलैंड यूनिवर्स) कहते हैं। पता नहीं कि कितनी दूरी तक हमको ब्रह्मांड मिलते चले जायेंगे या ब्रह्मांडों की भी कोई सीमा है। सब-कुछ-अब अभी तक किसी सीमा का पता नहीं चला है। परन्तु आरम्भ में तारों के बारे में भी

लोग यही समझा करते थे कि अनन्त दूरी तक तारे लगातार बिखरे होंगे। जब ज्ञान बढ़ा और पता चला कि जैसे-जैसे हम पृथ्वी से दूर जाते हैं, तारों की आबादी घटती जाती है तब आश्चर्य हुआ। जब पता चला कि तारों की दुनिया सीमित है तब बहुत आश्चर्य हुआ। परन्तु जब पता चला कि दिखाई पड़नेवाले सब तारे हमारे ही ब्रह्मांड में हैं और हमारे ब्रह्मांड की तरह प्रायः असंख्य ब्रह्मांड और भी हैं, जो एक दूसरे से पृथक्-पृथक् हैं तब बात समझ में आयी कि विश्व की रचना वस्तुतः कैसी है।

कोरी आँख से आकाशगंगा—जैसा पहले बताया जा चुका है, आकाशगंगा वह दीप्तिमय धारा है जो आकाश में तारों से पटी नदी-सी जान पड़ती है। गरमी के दिनों में स्वच्छ अँधेरी रात में सूर्यास्त के दो-तीन घंटे बाद आकाशगंगा का सबसे अधिक चमकीला भाग हमें प्रायः सर के ऊपर दिखायी पड़ता है। यदि पास-पड़ोस में बड़े नगर की चकाचौंध करनेवाली रोशनियाँ कोई न हों तो और भी अच्छा होगा। आकाश के एक छोर से दूसरे छोर तक विस्तृत आकाशगंगा बहुत स्पष्ट और सुन्दर दिखायी पड़ती है। उत्तर की ओर यह देवयानी (कैसोपिया) तारामंडल में से होकर जाती है और दक्षिण की ओर धनु नामक तारा-मंडल में से होकर। देवयानी से हंस तक आकाशगंगा में केवल एक धारा दिखायी पड़ती है, कहीं सँकरी, कहीं चौड़ी; परन्तु हंस से धनु तक दो धाराएँ दिखायी पड़ती हैं। बीच में काली-सी जगह दिखायी पड़ती है, जिसे वृहत् चीर (दि ग्रेट रिफ्ट) कहते हैं। हंस में आकाशगंगा अपेक्षाकृत अधिक चमकीली है; परन्तु ढाल (स्क्यूटम) नामक तारामंडल में इसके सबसे अधिक चमकीले भाग दिखायी पड़ते हैं।

एक समय में हमें आकाशगंगा का केवल आधा ही भाग दिखायी पड़ता है, आधा भाग क्षितिज के नीचे छिपा रहता है; परन्तु समय-समय पर देखते रहने से हम इसके सब भागों को देख सकते हैं। तब हमें पता चलता है कि आकाशगंगा के कुछ भाग हंसवाले भाग से बहुत कम चमकीले हैं। वृष राशि में आकाशगंगा सँकरी और मंद प्रकाश की हो जाती है। धनु राशि से दक्षिण एक स्थान पर आकाशगंगा में काला-सा टापू है, जो चारों ओर की चमक की अपेक्षा इतना काला जान पड़ता है कि ज्योतिषियों ने उसका नाम 'कोयले का बोरा' (कोल सैक) रख दिया है।

दूरदर्शक में आकाशगंगा—हाथवाले दो आँख के अच्छे दूरदर्शक (बाईनॉक्युलर्स) से या अन्य छोटे दूरदर्शक से देखने पर पता चलता है कि हजारों या लाखों मंद तारों के समूह से आकाशगंगा बनी है। यदि हम आकाश के विविध भागों में एक ही नाप के क्षेत्रों में तारों की संख्या गिनें, तो तुरन्त पता चलता है कि जैसे-जैसे हम आकाशगंगा के निकट आते हैं वैसे-वैसे तारों की संख्या बढ़ती जाती है। यदि मंद प्रकाश के तारों की भी गिनती की जाय, जो दूरदर्शक से ही दिखायी पड़ते हैं, तो तारों की संख्या में वृद्धि और भी स्पष्ट हो जाती है। उदाहरणत, यदि तीन इंच के दूरदर्शक से दिखायी पड़नेवाले सब तारों की गिनती की जाय, तो पता चलता है कि आकाशगंगा के समीपवर्ती भागों में उससे दूरस्थ भागों की अपेक्षा तिगुनी-चौगुनी घनी बस्ती है, परन्तु यदि १५ इंच के दूरदर्शक से दिखायी पड़नेवाले सब तारों का हिसाब

लगाया जाय तो पता चलता है कि आकाशगंगा के आस-पास दूरस्थ भागों की अपेक्षा दसगुनी घनी बस्ती है। इस जन-संख्या में स्वयं आकाशगंगा के तारों की गिनती नहीं की गयी है।

आकाशगंगा में किचपिचिया (कृत्तिका अथवा प्लाइडीज) के समान तारा-पुंज भी बहुत हैं। यहाँ यह बता देना उचित होगा कि राशि, तारा-मंडल, तारा-पुंज और तारामय नीहारिकाओं में क्या अंतर है। आकाश में जितने तारे दिखायी देते हैं, उन सब का नाम रखना तो प्राचीन ज्योतिषियों ने सुगम नहीं समझा; केवल कुछ के ही नाम वे रख पाये, जैसे रोहिणी, चित्रा, लुब्धक, धनिष्ठ, इत्यादि; या अँग्रेज़ी में एल्डिबैरन, स्पाइका, सिरियस, इत्यादि। शेष तारों को इंगित करने के लिए बैबिलन के ज्योतिषियों ने, और उनके आधार पर पीछे मिस्र तथा यूनान (ग्रीस) के ज्योतिषियों ने तारा-समूहों को विशेष नाम दिये और वे या वैसे ही नाम आज भी प्रचलित हैं, जैसे मेष, वृष, सप्तर्षि, देवयानी, आदि या लैटिन में एअरीज़, टॉरस, उर्सा मेजर, कैसोपिया, आदि; या अँग्रेज़ी में रैम, बुल, ग्रेट बेयर, आदि। इनमें से कुछ तारा-समूहों के चमकीले तारों से अवश्य उस वस्तु या जंतु का ध्यान आ जाता है, जिसके नाम से वे प्रसिद्ध हैं; उदाहरणतः, वृश्चिक के चमकीले तारों से सचमुच बिच्छू का आभास होता है। परन्तु अधिकांश तारा-समूहों के नाम रखने में कोरी कल्पना से काम लिया गया है। इन तारा-समूहों को तारामंडल (अँग्रेज़ी में कॉन्सटेलेशन) कहते हैं।

तारामंडलों से तारों के नाम लेने में सुविधा होती है। तारों के चित्रों में पहले तारा-मंडल के नामवाले जंतुओं आदि का चित्र भी बना रहता था। इसलिए बताया जा सकता था कि वृष (बैल) की आँख वाला तारा या वृश्चिक (बिच्छू) की पूंछ वाला तीसरा तारा, इत्यादि। जब दूरदर्शक से दिखायी पड़नेवाले तारों का भी अध्ययन आरंभ हुआ तो केवल विशेष तारों के समूहों को ही तारामंडल नहीं कहा गया, आकाश के विविध सीमित क्षेत्रों को तारामंडल माना गया और उस क्षेत्र में पड़नेवाले सब तारों को उस तारामंडल में समझा जाने लगा। तब तारामंडल के विविध तारों को यूनानी अक्षरों से या साधारण संख्याओं से सूचित किया जाने लगा। उदाहरणतः, ऐल्फा एराइटिज़ का अर्थ हुआ एअरिज़ (मेष) तारामंडल का ऐल्फा अक्षर वाला तारा, इसी प्रकार ३० एराइटिज़ से एअरिज़ (मेष) तारामंडल का ३० नम्बर वाला तारा समझा जाता है।

सूर्य के वार्षिक मार्ग में पड़नेवाले मंडलों को राशि कहते हैं। मेष, वृष, मिथुन, कर्क आदि राशियाँ हैं। इस प्रकार हम मेष तारामंडल कहने के बदले उसे मेष राशि कह सकते हैं; परन्तु राशि शब्द का एक अर्थ और है। सूर्य के मार्ग के बारहवें भाग को भी राशि कहते हैं। उदाहरणतः, कहा जा सकता है कि बृहस्पति का भोगांश (अर्थात् मेष के प्रथम विंदु से दूरी) ३ राशि ५ अंश १६ कला ३ विकला है। यहाँ १ राशि = ३०°।

तारामंडलों से छोटे कुछ विशेष समूहों को, जिनसे सूर्य या चन्द्रमा की स्थिति बतायी जाती है, नक्षत्र कहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा के मार्ग मोटे हिसाब से एक ही हैं। इस मार्ग को २७ बराबर भागों में बाँटकर प्रत्येक को एक नक्षत्र कहते हैं और अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, आदि उनका नाम रख दिया गया है। इस प्रकार नक्षत्र शब्द तीन अर्थों में प्रयुक्त होता है—(१) कोई तारा,

हैं; परन्तु अधिक शक्तिशाली दूरदर्शकों से लिए गये फोटोग्राफों से पता चलता है कि ऐसे स्थान भी वस्तुतः तारों के घने समूह हैं।

आकाशगंगा का रूप—पहले बताया जा चुका है कि हमारी मंदाकिनी-संस्था कुम्हार की चाक की तरह वृत्ताकार और चिपटी परन्तु बीच में फूली हुई है। ऊपर के चित्र में मंदाकिनी-संस्था की रूपरेखा दिखायी गयी है; परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि मंदाकिनी-संस्था की कोई तीक्ष्ण सीमा नहीं है। तारों की बस्ती सर्वत्र एक समान घनी रहने के बदले धीरे-धीरे बाहर की ओर क्षीण होती जाती है और यह कहना कि बस्ती कहाँ समाप्त होती है कठिन है। कुछ तारे, जो निसंदेह मंदाकिनी-संस्था के ही सदस्य हैं, चित्र में निरूपित सीमा के बाहर हैं। मंदाकिनी-संस्था के उस रूप को जो पृथ्वी-निवासियों को दिखायी पड़ता है आकाशगंगा कहते हैं।

जहाँ तक पता चला है, मंदाकिनी-संस्था अपने केंद्र की चारों ओर कुम्हार की चाक की तरह, नाच भी रही है। केंद्र से सूर्य तीस-पैंतीस हजार प्रकाशवर्ष की दूरी पर है। इससे सूर्य लगभग १५० मील प्रति सेकंड के वेग से चलता है, यद्यपि आस-पास के चमकीले तारों के सापेक्ष सूर्य केवल १२ मील प्रति सेकंड चलता जान पड़ता है। कारण यह है कि ये चमकीले तारे स्वयं चलायमान हैं। यह कि आकाशगंगा अपनी धुरी पर नाच रही है, गत पचीस वर्षों में ही निश्चयात्मक रूप से जाना जा सका है। इसका प्रमाण हम कई प्रकार से पाते हैं। एक रीति तो यह है कि हम पड़ोस के तारों का अध्ययन करें।

पड़ोस के तारे—जैसा पहले बताया जा चुका है, निकटतम तारा हमसे लगभग ३×१०^{११} मील की दूरी पर है, अर्थात इसकी दूरी

३,००,००,००,००,००,००० मील

है। इसलिए पड़ोस का अर्थ सँभल कर लगाना चाहिए। मान लीजिए कि हम केवल उन तारों पर विचार करना चाहते हैं जो हमसे ढाई सौ प्रकाशवर्ष से अधिक दूर नहीं हैं। इन सब तारों की निजी गति और दृष्टिरेखा में वेग नापने पर और गणना करने पर पता चलता है कि सूर्य इन सब तारों के गुरुत्वकेंद्र के सापेक्ष लगभग १२ मील प्रति सेकंड के वेग से भीम (हरक्युलीज़) तारामंडल की ओर जा रहा है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि सूर्य की वास्तविक गति यही है।

उन्नीसवीं शताब्दी के ज्योतिषियों को सूर्य की गति से उत्पन्न हुये परिणामों के अतिरिक्त तारों की गतियों के बारे में कुछ अधिक ज्ञान न था। परन्तु १९०४ में हॉलैंड के प्रसिद्ध ज्योतिषी कैप्टाइन ने अपने अनुसंधानों के बल पर घोषित किया कि तारों के दो समूह हैं, जो एक दूसरे से पृथक् हो रहे हैं। कैप्टाइन ने आकाश को छोटे-छोटे खंडों में बाँट कर यह देखना आरम्भ किया कि प्रत्येक खंड के तारों में किस प्रकार की निजी गति है। उसे पता चला कि तारे अनियमित रूप से नहीं चलते रहते हैं। अधिकांश तारे दो दिशाओं में चलते हैं। प्रत्येक आकाशीय खंड में इस प्रकार तारा-गति का अध्ययन करने पर अंतिम निष्कर्ष यही निकलता है कि तारों की दो धाराएँ हैं। एक धारा ढाल (स्क्यूटम) की ओर, दूसरी मृगव्याध (ओरायन) की ओर जा रही है। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन दोनों दिशाओं को मिलानेवाली रेखा आकाशगंगा की धरा-

तल में हैं। उस समय तो इसका कारण न ज्ञात हो सका कि तारे क्यों इस प्रकार चलते हैं; परन्तु कुछ वर्ष बाद यह सिद्ध किया गया कि यह हमारी मंदाकिनी-संस्था के अपनी धुरी पर घूमने का परिणाम है।

यह जान कर कि मंदाकिनी-संस्था किस वेग से अपनी धुरी पर घूमती है और उसका विस्तार कितना है, इसकी भी गणना की जा सकती है कि इस संस्था में कुल द्रव्य कितना है। अनुमान किया गया है कि कुल द्रव्य सूर्य के द्रव्य का लगभग २ लाख गुना होगा। इसमें से लगभग आधा द्रव्य केंद्रीय भाग में है और शेष द्रव्य दूर तक विस्तृत चिपटे भाग में। मंदाकिनी-संस्था अपनी धुरी पर एक चक्कर लगभग २० करोड़ वर्ष में लगाती है। पहली बार तो जान पड़ता है कि यह अति मंथर गति है; पर तु स्मरण रखना चाहिए कि इसी घूमने से सूर्य में १५० मील प्रति सेकंड अर्थात् लगभग साढ़े पाँच लाख मील प्रति घंटे का वेग उत्पन्न हो जाता है! यह भी स्मरण रखना चाहिए कि २० करोड़ वर्ष में एक बार घूमना औसत गति है। प्रत्येक तारे में निजी गति भी है। इसलिये तारों की गति का चित्र वस्तुतः इतना सरल नहीं है जितना ऊपर के स्थूल वर्णन में बताया गया है। फिर यह भी ज्ञात नहीं हो सका है कि मंदाकिनी संस्था क्यों घूमती रहती है। अनुसंधान हो रहा है, और ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्य में ही सफलता मिलेगी।

देवयानी नीहारिका—देवयानी तारामंडल में एक सर्पिल नीहारिका है, जो कोरी आँख से देखी जा सकती है। इसका विषुवांश ० घंटा ४० मिनट है और क्रांति +४१°। बरसात के बाद और जाड़े में यह स्वच्छ अँधेरी रातों में सुगमता से दिखायी पड़ती है। आकाशगंगा से यह लगभग २०° पर है। इस नीहारिका की मेसियर संख्या ३१ है। कोरी आँख से इसमें कोई ब्योरे नहीं दिखायी पड़ते, परन्तु दूरदर्शक में यह नीहारिका बहुत ही सुन्दर जान पड़ती है। बड़े दूरदर्शकों से लिए गये फोटोग्राफों से इसकी रचना स्पष्ट हो जाती है। बीच में प्रकाशमय केंद्र है और उससे सर्पिलाकार भुजाएँ निकली हैं; परन्तु तिरछा दिखायी पड़ने के कारण भुजाएँ उतनी स्पष्ट और पृथक् नहीं दिखायी पड़तीं जितनी कई अन्य सर्पिल नीहारिकाओं में। बड़े दूरदर्शकों द्वारा जाँच से पता लगता है कि केंद्र और भुजाएँ सभी अंग असंख्य तारों के समूह हैं।

पृष्ठभूमि में नन्ही-नन्ही सर्पिल नीहारिकाएँ और अग्रभूमि में चमकीले तारे बहुत दिखायी पड़ते हैं, जिससे अनुमान किया जाता है कि देवयानी नीहारिका की दिशा में धूलि आदि विशेष-अधिक नहीं हैं जो प्रकाश का शोषण कर ले। इस नीहारिका के आस-पास दिखायी पड़ने वाली नन्ही-नन्ही नीहारिकाएँ अत्यन्त दूर होने के कारण ही नन्ही जान पड़ती हैं। इनमें से कोई भी नीहारिका ऐसी नहीं है जो एक करोड़ प्रकाश-वर्ष से कम दूरी पर हो। जितने तारे देवयानी नीहारिका के आस-पास दिखायी पड़ते हैं, वे हमारी मंदाकिनी-संस्था के हैं और देवयानी नीहारिका की तुलना में हमारे बहुत पास हैं। देवयानी नीहारिका की दो साथिनियाँ भी हैं, जो अपेक्षाकृत छोटी हैं, परन्तु पृष्ठभूमि की नीहारिकाओं से बहुत बड़ी दिखायी पड़ती हैं। देवयानी नीहारिका की ही दूरी पर रहने के कारण अवश्य ये देवयानी नीहारिका के पास होंगी। इसी से ये देवयानी नीहारिका की साथिनियाँ कहलाती हैं।

सेफीइड तारों की चमक घटने-बढ़ने के चक्रकाल से पता चलता है कि देवयानी नीहारिका हमसे लगभग साढ़े सात लाख प्रकाश-वर्ष की दूरी पर है। परन्तु संभव है कि इस नीहारिका और हमारे बीच में कुछ धूलि हो जिसके कारण नीहारिका का प्रकाश धूमिल हो गया है। इसलिए इस दूरी में ५० हजार प्रकाश-वर्ष की त्रुटि हो सकती है।

नाप—देवयानी नीहारिका कितनी बड़ी है, इसका उत्तर अब हम दे सकते हैं, क्योंकि दूरी ज्ञात होने से कोणीय नाप को हम मीलों में परिवर्तित कर सकते हैं। बड़े दूरदर्शकों से लिए गये अच्छे फोटोग्राफों में यह नीहारिका लगभग १६० कला लंबी और लगभग ४० कला चौड़ी है। इस प्रसंग में स्मरण रखना चाहिए कि पूर्ण चन्द्रमा का व्यास लगभग ३२ कला है। इस प्रकार, यदि नीहारिका का संपूर्ण विस्तार हमें कोरी आँख से दिखाई पड़ता तो पूर्ण चन्द्रमा से उसका क्षेत्रफल हमको सात गुना अधिक प्रतीत होता।

गणना करने से पता चलता है कि पूर्वोक्त नाप के अनुसार देवयानी नीहारिका की लम्बाई लगभग ३५,००० प्रकाश-वर्ष होगी और चौड़ाई लगभग ८,७०० प्रकाश-वर्ष। नीहारिका अधिक चिपटी हमें इसीलिए दिखायी पड़ती है कि हम उसे तिरछी दिशा से देख रहे हैं। यदि हम उसकी धरातल से समकोण बनाती हुई दिशा से उसे देख सकते तो हमको वह वृत्ताकार दिखायी पड़ती। उसे वृत्ताकार मान कर गणना करने से यह परिणाम निकलता है कि हमारी दृष्टिरेखा नीहारिका के धरातल से कुल १५ अंश का कोण बनाती है। एक प्रकार हम प्रायः उसके धरातल में है।

आँख से, चाहे हम बड़े दूरदर्शक की सहायता भी क्यों न लें, इस नीहारिका की सर्पिल भुजाएँ हमें नहीं दिखायी पड़ती। केवल फोटोग्राफों से ही उनका पता चलता है। दूरदर्शक द्वारा यह नीहारिका ऐसी दिखायी पडती है जैसे किसी तारे को हम कुहेरा में डूबा हुआ देखें। इसका अर्थ यह है कि नीहारिका के केंद्र से दूर पर स्थित भाग बहुत मंद प्रकाश के हैं। जब हम बड़े दूरदर्शक से लिए गये अच्छे प्लेट के घनत्व का अनुमान केवल आँख से न करके सूक्ष्म-घनत्वमापक से नापते हैं तो पता चलता है कि नीहारिका वस्तुतः उससे भी बहुत अधिक विस्तृत है, जितनी यह फोटोग्राफ में दिखायी देती है। सूक्ष्म-घनत्वमापक यंत्र में प्रकाश को सिलीनियम-सेल की सहायता से विद्युत में परिवर्तित कर लेते हैं और उसे अत्यन्त सूक्ष्म विद्युतमापक से नापते हैं। इस प्रकार प्लेट का घनत्व बड़ी सूक्ष्मता से नप जाता है। इससे नापने पर पता चलता है कि क्षेत्रफल में नीहारिका ७० पूर्ण चंद्रों के क्षेत्रफल से कम नहीं है। वस्तुतः यह बहुत बड़ी नीहारिका है। साथ ही एक बात और ध्यान देने योग्य है। सूक्ष्म-घनत्वमापक से नापने पर पता चलता है कि नीहारिका प्रायः गोल है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि नीहारिका का घना भाग पहिये की तरह वृत्ताकार है जिसका केंद्र बहुत चमकीला है, और यह पहिया सब ओर से मंद प्रकाश युक्त आवरण से अवगुंठित है। अभी पता नहीं है कि यह अवगुंठन मंद प्रकाश के असंख्य तारों से निर्मित है अथवा गैसमय है। निकट भविष्य में इतने बड़े दूरदर्शक या इतने तेज प्लेट के बनने की आशा नहीं है कि हम अवगुंठन के भेद को जानने में सफल हो सकें; परन्तु अपनी मंदाकिनी-संस्था की

संरचना को ध्यान में रखते हुए यह अधिक संभव जान पड़ता है कि देवयानी नीहारिका का अवगुंठन तारामय ही हो।

देवयानी नीहारिका की एक संगिनी मेसियें ३२ है। माउंट विलसन के १०० इंचवाले दूरदर्शक से फोटोग्राफ लेने पर इसकी तारामय संरचना स्पष्ट हो जाती है। इसकी दूरी भी उतनी ही है जितनी देवयानी नीहारिका की। देवयानी नीहारिका की दूसरी संगिनी एन० जी० सी० २०५ है। देवयानी नीहारिका से यह छः श्रेणी मंद है; परन्तु उतनी ही दूरी पर रहने के कारण अवश्य ही उससे सबन्धित है। इसके अस्तित्व से हमें यह सूचना मिलती है कि सभी तारामय नीहारिकाएँ मंदाकिनी-संस्था या देवयानी नीहारिका की तरह बड़ी नही होती। परतु छोटी नीहारिका की भी वास्तविक चमक हमारे सूर्य से ७० लाख गुनी अधिक है; देवयानी नीहारिका की वास्तविक चमक इससे भी सवा दो सौ गुनी अधिक है।

ऊपर बताया गया है कि देवयानी नीहारिका का अवगुंठन दूर तक विस्तृत है। वस्तुतः उस नीहारिका की पूर्वोक्त दोनो साथिनियाँ भी इसी अवगुंठन में लिपटी हुई हैं। इस प्रकार इन तीनो को त्रिक नीहारिका समझने के बदले उन्हें मिला कर एक ही नीहारिका समझना अधिक उत्तम होगा।

मेसियें ३३—मेसियें ३३ देवयानी नीहारिका से लगभग १४ अंश की दूरी पर है। पृथ्वी से इस नीहारिका की दूरी लगभग देवयानी नीहारिका के समान ही है और बहुत संभव है दोनो में कोई भौतिक सबंध भी हो। इसलिए कभी-कभी इसे भी देवयानी नीहारिका की साथिनी समझा जाता है। फोटोग्राफो से पता चलता है कि मेसियें ३३ भी सर्पिल नीहारिका है। हमारी दृष्टिरेखा इसके धरातल से प्रायः ३० अंश का कोण बनाती है। इसलिए इसकी सर्पिल भुजाएँ हमें अधिक स्पष्ट दिखायी पड़ती है। यह काफी बड़ी नीहारिका है।

देवयानी नीहारिका की तौल—हम देवयानी नीहारिका की तौल का भी अनुमान अच्छी तरह कर सकते है। गणना किया गया है कि उसका द्रव्यमान एक अरब सूर्यों से कम न होगा और दो खरब सूर्यों से अधिक न होगा। इससे अधिक सूक्ष्म गणना करना इसलिए असभव है कि कई बातें, जैसे चमक, दूरी आदि, ठीक-ठीक ज्ञात नही हैं।

अब हम इसका भी अनुमान कर सकते है कि इस नीहारिका में कितने तारे होंगे। यदि सभी तारे हमारे सूर्य के समान हों तो प्रत्यक्ष है कि उन की संख्या एक अरब और दो खरब के बीच होगी। तौल का अनुमान करने के लिए हम देखते है कि यदि नीहारिका हमारे सूर्य की दूरी पर लायी जा सकती तो यह हमको सूर्य से लगभग डेढ़ अरब गुनी चमकीली दिखायी पड़ती। परतु इस नीहारिका में कई तारे ऐसे हैं जिन्हें ज्योतिषी दैत्य (जायंट) और अति दैत्य (सुपर जायट) वर्ग में रखते हैं। यदि कल्पना की जाय कि सूर्य और इन तारो से तौल में बराबर-बराबर द्रव्य

हम लेते हैं तो इन बराबर द्रव्यों की चमक एक-सी न होगी। दैत्य और अति दैत्य तारों के द्रव्य से अधिक चमक निकलेगी। परंतु अधिक संभव है कि देवयानी नीहारिका के अधिकांश तारे हमारे सूर्य से अधिक भारी और कम चमकीले हों। वे वैसे तारे होंगे जिन्हें ज्योतिषी वामन (ड्वार्फ) तारे कहते हैं। इस प्रकार के तर्कों से यही परिणाम निकलता है कि यद्यपि देवयानी नीहारिका की वास्तविक चमक हमारे सूर्य से डेढ़ अरब गुनी अधिक है, तो भी अधिकांश तारों के वामन होने के कारण उसकी तौल सूर्य की तौल की खरब-दो खरब गुनी हो सकती है।

इस प्रकार हमने सात नीहारिकाओं की सरसरी जाँच कर ली है : अपनी मंदाकिनी-संस्था; दोनों मैगिलन मेघ; देवयानी नीहारिका, उसकी दो साथिनियाँ, और एक पड़ोसिन (मेसिये ३३)। आगामी अध्याय में हम नीहारिकाओं को क्रमबद्ध वर्गों में विभाजित करने की चेष्टा करेंगे।

तृतीय अध्याय

नीहारिकाओं की जातियाँ

नीहारिकाओं का वर्गीकरण—नीहारिकाओं का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है; परंतु उनकी दो मुख्य जातियाँ हैं : एक तो गांग (अंग्रेजी में गैलैक्टिक) और दूसरा अगांग (एक्स्ट्रा गैलैक्टिक)। अगांग नीहारिकाओं को अंग्रेजी में नॉनगैलैक्टिक या ऐनागैलैक्टिक भी कहते हैं। इन्हीं को ब्रह्मांड (अंग्रेजी में गैलैक्सी) भी कहते हैं।

गांग नीहारिकाओं का नाम ऐसा इसलिए पड़ा है कि वे हमारी आकाशगंगा के धरातल में या इस धरातल के पास रहती हैं; अगांग नीहारिकाएँ इस धरातल से दूर रहती हैं। यद्यपि गांग और अगांग नाम आकाशगंगा के पास रहने या न रहने से ही पड़े हैं, तो भी नीहारिकाओं की इन दो जातियों में कई बातों में महत्वपूर्ण अंतर है, जो आकाशगंगा के पास रहने या न रहने पर निर्भर नहीं है। उदाहरणतः, अगांग नीहारिकाएँ बहुत दूर हैं, उनकी वास्तविक चमक अधिक है, लंबाई-चौड़ाई में वे अति विशाल होती हैं और उनकी संरचना सर्पिल या गोलाभ होती है। गांग नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत निकट और छोटी तथा असर्पिल होती हैं; वस्तुतः वे हमारी मंदाकिनी-संस्था के ही अंतर्गत हैं।

गांग नीहारिकाएँ—गांग नीहारिकाओं को मोटे हिसाब से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है : (१) प्रसृत (डिफ्यूज) और (२) ग्रहीय (प्लैनिटैरी)। प्रसृत नीहारिकाओं की रूप-रेखाएँ तीक्ष्ण नहीं होतीं और न वे किसी विशेष आकृति की होती हैं। ऐसी नीहारिकाएँ बहुत कुछ हल्के, बिखरे बादल की तरह होती हैं। प्रसृत नीहारिकाओं को दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है, प्रकाशमय और अप्रकाशमय। परंतु इन दोनों मेल की नीहारिकाओं में कोई मौलिक अंतर नहीं जान पड़ता। अधिकतर वे इस प्रकार एक दूसरे में मिली रहती हैं कि उनको एक दूसरे से पृथक् नहीं माना जा सकता। वे एक ही नीहारिका की विविध टुकड़ियाँ हैं, जो कहीं प्रकाशमय कहीं अप्रकाशमय, रहती हैं। प्रकाशमय नीहारिकाओं को हम बहुधा चमकीली नीहारिकाएँ कहेंगे और अप्रकाशमय नीहारिकाओं को काली नीहारिकाएँ।

ग्रहीय नीहारिकाओं का नाम इसलिए पड़ा है कि वे वृत्ताकार या प्रायः वृत्ताकार दिखाई पड़ती हैं, जिस प्रकार ग्रह होते हैं। अवश्य ही वे उतनी प्रदीप्त नहीं होतीं; परंतु आकृति प्रायः वृत्ताकार होती है और उनकी रूपरेखा तीक्ष्ण होती है। ऐसी नीहारिकाओं में एक विशेषता यह भी होती है कि उनके केंद्र में कोई चमकीला तारा रहता है।

प्रसृत नीहारिकाएँ—आधुनिक फोटोग्राफों तथा अन्य खोजों से यह निश्चित है कि तारों के बीच का स्थान पूर्णतया रिक्त नहीं है। उसमें अणु और कण बिखरे पड़े हैं, अर्थात् अंतरिक्ष

में धूलि है। इस धूलि का घनत्व भी सर्वत्र एक-सा नहीं है। घनत्व कहीं-कहीं तो प्रायः शून्य के बराबर है, और कहीं-कहीं इतना है कि पीछे के तारे बहुत-कुछ छिप जाते हैं। हमारी मंदाकिनी-संस्था में इस प्रकार का पदार्थ बहुत है, कहीं-कहीं अंधकारमय पदार्थ चमकीले पदार्थ के सामने आ गया है और तब वह अंधकारमय पदार्थ हमको अंधकारमय नीहारिका के रूप में दिखाई पड़ता है। घोड़मुँही नीहारिका (दि हॉर्स हेड नेब्युला) इसका एक सुन्दर उदाहरण है। फोटोग्राफ देखते ही पता चलता है कि प्रकाशमय नीहारिका के सम्मुख काले बादल के समान जुटे पदार्थ से इस नीहारिका की उत्पत्ति हुई है।

अन्य स्थानों में धूलि चमकीले तारों के पास है, जिसके कारण वह चमक उठती है। उस में चमक दो तरह से उत्पन्न हो सकती है। या तो अत्यंत तप्त तारों की अदृश्य पराकासनी तरंगों से क्षुब्ध होने पर उसमें निजी प्रकाश उत्पन्न होता है; या अपेक्षाकृत कम तप्त तारों का प्रकाश उनपर पड़ कर बिखर जाता है और तब नीहारिका का पदार्थ उसी प्रकार प्रकाशमय हो जाता है, जिस प्रकार सड़क के विद्युत्-दीपों से पास-पड़ोस का कुहेसा। नीहारिकाओं के वर्णपटों से स्पष्ट पता चल जाता है कि प्रकाश बिखर कर आ रहा है या नीहारिकाओं की निजी उपज है। पहले इन बातों को वैज्ञानिक लोग भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाये थे। थोड़ी-सी ऐसी प्रदीप्त नीहारिकाओं की जांच से जिनमें निजी प्रकाश उत्पन्न हुआ था, उन्होंने यह समझ रखा कि सभी प्रकाशमय नीहारिकाएँ अत्यंत तप्त गैस हैं। फिर उन्हें अचरज होता था कि इतनी प्रसरित अवस्था में होते हुए भी कि उनके अणु और कण एक दूसरे से दूर-दूर पर होंगे, वे कैसे तप्त रह पाती हैं। १८६४-६८ में विलियम हगिन्स (W. Huggins) ने अपने वर्णपटनिरीक्षक (स्पेक्ट्रॉस्कोप) से नीहारिकाओं की परीक्षा की। उसने देखा कि कई नीहारिकाओं के वर्णपटों में इने-गिने रंगों की किरणों में ही सारी दीप्त सीमित है। ऐसा वर्णपट साधारणतः तब उत्पन्न होता है जब कोई गैस अति तप्त होकर स्वयं प्रदीप्त हो जाती है। हगिन्स के बाद औरों ने भी नीहारिकाओं के वर्णपटों की जाँच की और उनको भी यही परिणाम मिला। इसीलिए लोगों को विश्वास हो गया कि नीहारिकाओं में अति तप्त गैस रहती है। परंतु १९१२ में लॉवेल वेधशाला के वी० एम० स्लाइफर (V. M. Slipher) ने घोषित किया कि कृत्तिकाओं को घेर रखनेवाली नीहारिका के वर्णपट में चमकीली पृष्ठ-भूमि है और उनमें काली धारियाँ हैं; और यह वर्णपट ठीक वैसा ही है, जैसा वातावरण में लिपटे तारों का होता है। पीछे इसी प्रकार के वर्णपट कई अन्य नीहारिकाओं से भी मिले। तब सिद्ध हो गया कि कुछ नीहारिकाएँ केवल पृष्ठभूमि के तारों के प्रकाश से ही हमें दिखाई पड़ती हैं। यह सिद्धांत कि शेष नीहारिकाएँ तप्त रहने के बदले पड़ोस के तारों से आये अदृश्य पराकासनी तरंगों से क्षुब्ध होकर चमकती हैं, आई० एस० बोवेन (I.S. Bowen) का था और १९२७ में प्रकाशित हुआ। यह सिद्धांत अब पूर्णतया संतोषजनक समझा जाता है। इसके पहले अमरीका के हबल (Hubble) ने वेधों से सिद्ध किया था कि जब पड़ोस के तारे का तापक्रम २०,००० डिगरी सेंटीग्रेड से अधिक रहता है, तब नीहारिका से चमकीली रेखाओंवाला वर्णपट मिलता है और जब तारा उससे कम तापक्रम का रहता है तब नीहारिका से काली रेखाओंवाला वर्णपट

मिलता है। उसने यह भी देखा था कि नीहारिका का चमकीला भाग कितना विस्तृत है, यह इस पर निर्भर है कि केंद्रीय तारा कितना चमकीला है। तारा जितना ही चमकीला रहता था नीहारिका उतनी ही अधिक दूर तक विस्तृत मिलती थी। इन दोनो बातों से इसीका संकेत होता था कि नीहारिका स्वयं अतितप्त होने के कारण नही चमकती। उसे किसी-न-किसी प्रकार पास के तारे से सहायता मिलती है। बोवेन का सिद्धांत इन्ही बातो पर आश्रित है।

नीहारिकाओं की गति—जिन नीहारिकाओं के वर्णपटो में चमकीली रेखाएँ होती हैं दृष्टिरेखा में उनका वेग निकाला जा सकता है। कारण यह है कि यद्यपि प्रकाश मंद रहता है तो भी थोडी-सी चटक रेखाओं में एकत्रित रहने के कारण उन रेखाओ का फोटोग्राफ खिंच आता है। लिक वेधशाला के ज्योतिषियों ने कई नीहारिकाओं के दृष्टिरैखिक वेग नापे हैं। परिणाम यह निकला है कि अधिकांश नीहारिकाएँ अपक्षाकृत मंद गति से चलती हैं। बहुतों का वेग छ:-सात मील प्रति घंटा है। संपूर्ण वेग ज्ञात करने के लिए दृष्टिरेखा से समकोण बनानेवाली दिशा में भी वेग ज्ञात होना चाहिए; परन्तु यह वेग नही नापा जा सका है, क्योंकि नीहारिकाओं में कोई तीक्ष्ण विन्दु या रेखा ऐसी नही रहती जिस पर ध्यान देने से नीहारिका का वेग सूक्ष्मता से नापा जा सके। फिर, नीहारिकाओ के अच्छे फोटोग्राफ थोड़े ही दिनो से संभव हो सके हैं। अधिक समय बीतने पर ही, दुबारा फोटोग्राफ लेकर, नीहारिकाओ की निजी गति जानी जा सकेगी। स्मरण रहे कि दृष्टिरेखा में वेग डॉपलर सिद्धांत से, वर्णपट की जाँच से नापा जाता है और इसके लिए केवल एक वर्णपट-फोटोग्राफ काफी होता है। दृष्टिरेखा से समकोणवाली दिशा का वेग दो फोटोग्राफों की तुलना से जाना जाता है; तुलना से देखा जाता है कि इन दोनो फोटोग्राफो में नीहारिका अपनी पहली स्थिति से कितनी दूर हट गई।

घटने-बढ़नेवाली नीहारिकाएँ—थोड़ी-सी ऐसी भी नीहारिकाएँ हैं, जिनका प्रकाश घटता-बढ़ता जान पड़ता है। उनके केंद्रीय तारो का प्रकाश भी घटता-बढ़ता है। पहले तो ऐसा समझा गया कि तारो के प्रकाश के न्यूनाधिक होने के कारण ही नीहारिकाओ का प्रकाश घटता-बढता होगा। परन्तु खोज से पता चला कि दोनों के प्रकाश की घटती-बढ़ती में कोई संबध नही है। इस विषय में अभी और खोज की आवश्यक्ता है; परन्तु ऐसी नीहारिकाएँ आकाश में कम हैं। एक दरजन से कम ही ऐसी नीहारिकाएँ देखी गयी हैं। अनुमान यह किया जाता है कि इन नीहारिकाओ की धूलि आदि निश्चल अवस्था में नहीं है, जैसे बादलों के चलते रहने से कभी बहुत अँधेरा कभी बहुत उँजाला पृथ्वी पर हुआ करता है, उसी प्रकार इन नीहारिकाओ में कभी घना, कभी पतला भाग के हमारे सामने आ जाने से प्रकाश घटता-बढ़ता-सा जान पडता है।

काली नीहारिकाएँ—आकाशगंगा में कई स्थान ऐसे हैं जहाँ कोई तारा नही दिखाई पड़ता। कोयले की बोरी (कोल सैक) की चर्चा पहले की जा चुकी है। इसी प्रकार के अन्य स्थान भी हैं, यद्यपि वे इतने बड़े नहीं हैं। बड़े हरशेल ने इन में से कुछ को देखा था। उसकी धारणा थी कि ये आकाश के छिद्र हैं जिनसे अनत दूर तक का शून्य दिखाई पडता है। अमरीका के बारनार्ड ने सैकड़ो ऐसे रिक्त स्थानो की सूची बनाई। उसके अध्ययन ने उसे अन्त में इस सिद्धात पर

पहुँचाया कि तारों से जगमगाते आकाश में ऐसे स्थान छिद्र नही हैं; वे काले बादल हैं जो तारों को ढके हुए हैं। इन्हें हम अंधकारमय या काली नीहारिकाएँ कहते हैं। ऐसी नीहारिकाएँ छोटी भी हैं और बडी भी। आकाशगंगा में हंस (सिगनस) से नराश्व (सेंटॉरस) तक जो दो शाखाएँ हो गयी हैं वे भी बीच में काली नीहारिका के पड़ जाने से ही बन गयी हैं। कुछ दूरस्थ सर्पिल नीहारिकाओं में भी काली मेखला सर्पिल नीहारिका को घेरे हुये दिखायी पड़ती हैं। इनसे तुलना करने पर हमारी आकाशगगा में भी काली नीहारिका का बीच में पड़ जाना कोई विचित्र बात नही जान पडती।

काली नीहारिकाएँ अवश्य परमाणु, अणु, धूलि, कण, आदि से बनी होंगी; परंतु यह पदार्थ आया कहाँ से? पहले तो यह सिद्धात उपस्थित किया गया कि यह पदार्थ तारों में से ही प्रकाशचाप के कारण निकला होगा। यह प्रसिद्ध बात हैं कि छोटे कणो पर प्रकाश का दबाव पडता हैं। इसी कारण पुच्छल तारो की पूँछ सदा सूर्य से उलटी दिशा में रहती है। नूतन तारो में, अर्थात् उन तारों में जो पहले इतने मंद रहते हैं कि उन पर कोई विशेष ध्यान नही देता; परतु अचानक विस्फोट के कारण वे अत्यन्त चमकीले हो जाते हैं, अवश्य पदार्थ निकलता देखा गया हैं। परंतु सूर्य में विस्फोट से निकला पदार्थ फिर सूर्य में ही गिरता हुआ दिखाई पड़ता हैं। इसलिए यदि कुछ पदार्थ दूर चला जाता होगा तो वह कम ही मात्रा में। हाल के अनुसंधानो से पता चलता हैं कि हमारी मंदाकिनी-संस्था की सारी काली नीहारिकाओ का कुल द्रव्यमान समस्त तारों के द्रव्यमान के लगभग बराबर ही होगा। इसलिए यह विशेष संभव नही जान पड़ता कि इतना सारा पदार्थ तारो में से ही निकला हो। यह भी संभव नही जान पड़ता कि यह अधकारमय पदार्थ सृष्टि के आरम से ही वर्तमान था; परतु इस प्रश्न पर कि पदार्थ कहाँ से आया, विचार करने के पहले इस पर विचार करना अधिक उचित होगा कि देख लिया जाय कि यह पदार्थ क्या हैं, किस रूप में हैं और कितना हैं।

यह देखकर कि सूर्य के आस-पास के तारे किस प्रकार चल रहे हैं, गतिविज्ञान के आधार पर इसकी गणना की जा सकती हैं कि सूर्य के पडोस में द्रव्य का घनत्व क्या होगा। ओर्ट (Oort) के अनुसंधानो से पता चला हैं कि सूर्य के पडोस में धूलि और गैस का घनत्व लगभग ३×१०^{-२४} ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर होगा। यह घनत्व बहुत ही कम है। सरसों के बराबर पदार्थ को महीन चूर्ण करके एक मील व्यास के गोले में बिखेर देने से जो घनत्व प्राप्त होगा, लगभग उतना ही घनत्व तारो के बीच के अतरिक्ष में हैं। केवल अरब-खरब मील की गहराई के कारण ही उसका कुछ प्रभाव दिखाई पडता है; लाख दो लाख मील या करोड दस करोड़ मील की गहराई तक इस धूलि का प्रभाव उपेक्षणीय ही होगा।

अब प्रश्न यह उठता हैं कि आकाश में बिखरे हुए कण कितने बडे होंगे, इसका पता तारो के रग से लगता हैं। धूलि और गैस में से आने से तारो का रग कुछ ललछौंह हो जाता हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रात या सायकाल का सूर्य हमें लाल दिखाई पड़ता हैं। तारो के रंगों में कितनी लाली धूलि आदि के कारण उत्पन्न होती है, इसे जानने से हम धूलि के कणो का औसत व्यास जान सकते हैं। परतु यह स्मरण रखना चाहिए कि तारा स्वय ललछौंह हो सकता हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि ये धूलिकण किस पदार्थ के हैं। क्या इन कणों में लोहा आदि धातु हैं या पृथ्वी की धूलि की तरह ये बालू के कण हैं या वे केवल हिम कण हैं। प्रत्यक्ष है कि हम अंतर्तारकीय धूलि की बानगी बटोर कर प्रयोगशाला में उस का निरीक्षण नहीं कर पायेंगे; परंतु भौतिक विज्ञान, गणित और तर्क से अंतर्तारकीय धूलि की संरचना का भी अनुमान किया जा सका है।

धातुओं पर जब प्रकाश पड़ता है तब प्रकाश के अधिक भाग को धातु सोख लेती है और इससे धातु गरम हो जाती है; परंतु अधातु पर, जैसे बालू आदि पर, जब प्रकाश पड़ता है, तब उस का अधिक भाग बिखर जाता है। भौतिक विज्ञानवाले इसका कारण भी अब जान गये हैं कि ऐसा क्यों होता है; परंतु उस कारण को यहाँ उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं है। परिणाम ही यहाँ पर्याप्त होगा। अब सोचने की बात है कि बिखरने के बदले यदि प्रकाश का अधिकतर शोषण होता तो तारों के बीच का आकाश हमें काला लगता। प्रकाशविद्युत यंत्र से तारों के बीच के आकाश को आकाशगंगा में नापने पर और पृष्ठभूमि के तारों से आये प्रकाश को घटाने पर काफी प्रकाश बच रहता है, जो अवश्य ही अंतर्तारकीय धूलि से बिखर कर आता होगा। इस प्रकार के खोजों से अंतिम परिणाम यह निकलता है कि अंतर्तारकीय धूलि अधिकतर अधातुओं से बनी होगी। वह धूलि बालू (सिलिका) या जल के परमाणुओं की हो सकती है।

अंतर्तारकीय गैस—तारों के बीच के रिक्त स्थान में धूलि-कणों के अतिरिक्त गैस के अणु अवश्य होंगे; परंतु यह कोरा अनुमान ही नहीं है। इसका प्रमाण भी मिला है। गैस के अणु तारों के प्रकाश से विशेष रंगों को सोख लेते हैं और इस प्रकार उनके कारण तारों के वर्णपटों में काली धारियाँ बन जाती हैं। परंतु ऐसी काली धारियाँ तारे के निजी प्रकाश में भी रह सकती हैं। इसलिए यह मान लेने के पहले कि काली रेखाएँ अंतर्तारकीय धूलि से बनी हैं, हमें प्रमाण मिलना चाहिए कि ये काली रेखाएँ तारे पर ही नहीं बनी हैं। इसका प्रमाण उन युग्म तारों से मिला है, जो एक दूसरे के चारों ओर नाचते रहते हैं, या यों कहिये कि दोनों अपने सम्मिलित गुरुत्वकेंद्र के चारों ओर नाचते रहते हैं। इसलिए इन तारों में से जब एक हमारी ओर आता रहता है तब दूसरा हम से दूर जाता रहता है। परिणाम यह होता है कि डॉपलर नियम के अनुसार वर्णपट में एक तारे के आये प्रकाश की काली रेखाएँ कुछ दाहिने हट जाती हैं और दूसरे तारे के प्रकाश की रेखाएँ कुछ बाएँ हट जाती हैं, जिससे इन तारों के प्रकाश से बनी रेखाएँ दोहरी हो जाती हैं। परंतु अंतर्तारकीय गैसों से उत्पन्न काली रेखाएँ एकहरी और इसलिए तीक्ष्ण रह जाती हैं। पहली बार १९०४ में हार्टमान (Hartmann) ने देखा कि डेल्टा ओरायनिस नामक युग्म तारे के वर्णपट में अन्य रेखाएँ तो चौड़ी या दोहरी हो जाती हैं; परंतु कैल्सियम की रेखाएँ तीक्ष्ण और स्थिर रहती हैं। इसलिए स्पष्ट है कि अंतर्तारकीय धूलि में अवश्य कैल्सियम के परमाणु हैं। पीछे अधिक शक्तिशाली यंत्रों से इस मामले की जाँच करने पर कैल्सियम के अतिरिक्त पोटैसियम, सोडियम, टाइटेनियम और लोहा के अस्तित्व का भी पता चला। इन मौलिक धातु-तत्वों के अतिरिक्त ऑक्सिजन और कारबन, हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन के

विशेष यौगिकों का पता लगा है। अनुमान किया जाता है कि तत्वों में से हाइड्रोजन ही सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान होगा। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि अंतर्तारकीय अंतरिक्ष में प्रायः वे सभी तत्व होंगे जो पृथ्वी या सूर्य में हैं; केवल कम मात्रा में या विशेष अवस्था में रहने के कारण उनकी रेखाएँ अभी तक वर्तमान यंत्रों से नहीं देखी जा सकी हैं।

काली नीहारिकाओं की दूरी—काली नीहारिकाओं की दूरी ज्ञात करने के लिए शक्तिशाली सांख्यिक रीतियों का उपयोग किया गया है। जरमन ज्योतिषी मैक्स वोल्फ ने पहले-पहल इस रीति का उपयोग किया। आकाश के दो क्षेत्र चुन लिये जाते हैं, जो क्षेत्रफल में बराबर रहते हैं। एक क्षेत्र तो ऐसा चुना जाता है जहाँ काली नीहारिका रहती है; दूसरा क्षेत्र ऐसा जहाँ अंतर्तारकीय धूलि के कारण न्यूनतम शोषण होता है। इन क्षेत्रों में विविध श्रेणियों के तारों की गिनती की जाती है। इन गिनतियों की तुलना से पता चलता है कि चमकीले तारे तो दोनों क्षेत्रों में प्रायः बराबर संख्या में रहते हैं; परंतु एक विशेष चमक से कम चमकवाले तारों की गिनती काली नीहारिकावाले क्षेत्र में कम रहती है। इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि उस विशेष चमक से अधिक चमकीले तारे नीहारिका के इस पार हैं और उससे कम चमकीले तारे औसतन नीहारिका के उस पार हैं। गणना से पता रहता ही है कि किसी विशेष औसत चमक के तारे हमसे कितनी दूरी पर हैं। इसलिए ज्ञान हो जाता है कि नीहारिका हमसे कितनी दूरी पर है। देखा गया है कि काली नीहारिकाएँ आकाशगंगा के दूरस्थ भागों से दूर नहीं हैं और इसलिए ये हमारी मंदाकिनी-संस्था के ही अंग हैं। यह भी नापा गया है कि अधिकांश काली नीहारिकाएँ ३० प्रतिशत से ले कर ९० प्रतिशत तक प्रकाश का शोषण करती हैं।

ग्रहीय नीहारिकाएँ—हर्शेल और उसके समय के ज्योतिषियों ने देखा कि आकाश में कहीं-कहीं ऐसे पिंड भी थे जो चमक में नीहारिकाओं की तरह थे; परंतु उनकी वृत्ताकार आकृति ग्रहों की तरह थी। इतना निश्चित था कि ये पिंड ग्रह नहीं थे, क्योंकि ग्रह तारों के बीच चलते रहते हैं और सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं; परंतु ये पिंड तारों के बीच निश्चल थे। ग्रहों की आकृति के होने के कारण सर विलियम हर्शेल ने इनको ग्रहीय नीहारिकाएँ कहना आरंभ किया, यद्यपि उनमें और ग्रहों में कोई भी संबंध नहीं है। ग्रह सब सूर्य के पास हैं; परंतु ग्रहीय नीहारिकाएँ ३,००० से १०,००० प्रकाशवर्ष पर हैं, जहाँ, जैसा पहले बताया जा चुका है, एक प्रकाशवर्ष ६×१०^{१२} मील का होता है। ग्रहीय नीहारिकाओं के केंद्र में नीला तारा रहता है। नीले रंग का अर्थ यह है कि वह तारा अति तप्त होगा। पीछे ज्योतिषियों ने यह सिद्ध किया कि नीहारिकामय आवरण का प्रकाश वस्तुतः केंद्रीय तारे के पराकासनी प्रकाश से उत्पन्न होता है। पाठकों ने आधुनिक फ्लुओरेसेंट ट्यूब लाइट देखा होगा। इसकी नलिका के भीतर प्रदीप्तिमान (फ्लुओरेसेंट) पदार्थ पुता रहता है। जब नलिका के एक सिरे से दूसरे सिरे तक विद्युत्मोक्षण (डिस्चार्ज) होता है तब भीतर-ही-भीतर पराकासनी प्रकाश उत्पन्न होता है। यदि नलिका स्वच्छ होती तो हमको बहुत कम प्रकाश मिलता, क्योंकि विशुद्ध पराकासनी प्रकाश को हम देख नहीं सकते। परंतु जब ऐसा प्रकाश प्रदीप्तिमान पदार्थ पर पड़ता है तब उस पदार्थ से उज्ज्वल प्रकाश निकलने लगता

है। इसी तरह ग्रहीय नीहारिकाओं में भी प्रकाश उत्पन्न होता है। केंद्रीय तारे से जितना प्रकाश हमें मिलता है उसका चालीस, पचास गुना प्रकाश हमें उसके आवरण से मिलता है। अनुमान किया गया है कि केंद्रीय तारे का तापक्रम लाख या सवा लाख डिगरी सेंटीग्रेड होता होगा।

ग्रहीय नीहारिकाएँ कोई छोटी और कोई बड़ी होती है, परन्तु साधारणतः उनका व्यास दस खरब मील के आस-पास होता है। यह व्यास सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी से दस हजार गुना बड़ा है। परन्तु नीहारिका का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान का पंचमांश ही होगा। इस प्रकार केंद्रीय तारे को छोड़ ग्रहीय नीहारिकाओं में इतना कम घनत्व रहता है कि उसकी कल्पना भी हमारे लिए कठिन है। अच्छे-से-अच्छे यंत्र से जब हम किसी बरतन की हवा को पंप से निकाल डालते हैं तब भी हम इतना कम घनत्व नहीं उत्पन्न कर पाते। गोल्डबर्ग और ऐलर ने अपनी पुस्तक 'ऐटम्स, स्टार्स ऐंड नेब्युली' में ग्रहीय नीहारिकाओं की संरचना और घनत्व दरसाने के लिए निम्न उदाहरण दिया है :

"मान लीजिये कि पानी पीने के साधारण गिलास में साधारण तापक्रम पर और साधारण निपीड (प्रेशर) पर हाइड्रोजन गैस भरी है। इसमें एक चम्मच साधारण वायु मिला दीजिये और धूलि के दो-चार कण। अब गिलास को बन्द कर दीजिये और कल्पना कीजिये कि गिलास बढ़ कर माउंट एवरेस्ट के बराबर हो जाता है और फूल कर उसका व्यास दो मील हो जाता है। तो गिलास के भीतर प्रसरित गैस घनत्व में और संरचना में बहुत-कुछ ग्रहीय नीहारिकाओं के समान हो जायगा।"

ये नीहारिकाएँ बहुत बड़ी हैं; इसी से वे हमें दिख जाती हैं अन्यथा उनके पृष्ठ के प्रति वर्गमील से इतना कम प्रकाश आता है कि उनका दिखाई पड़ना कठिन ही होता।

जैसा पहले कहा जा चुका है ग्रहीय नीहारिकाएँ प्रायः वृत्ताकार होती हैं और उनकी सीमा तीक्ष्ण होती है। प्रसृत नीहारिकाओं की तरह उनका क्षेत्र धीरे-धीरे मंद प्रकाश का हो कर नहीं मिटता है।

ग्रहीय नीहारिकाओं का वर्णपट—चमकीले प्रसृत नीहारिकाओं के वर्णपट की तरह ग्रहीय नीहारिकाओं के वर्णपट में भी चमकीली रेखाएँ रहती हैं। ये रेखाएँ तीक्ष्ण रहती हैं जिस का अर्थ यह है कि नीहारिका का घनत्व कम है। हाइड्रोजन की रेखाएँ प्रमुख होती हैं। हीलियम की रेखाएँ भी साधारणतः वर्तमान रहती हैं। ऑक्सिजन की रेखाएँ सब से चटक होती हैं। बहुत दिनों तक ऑक्सिजन वाली रेखाओं की उपस्थिति समझ में नहीं आती थी, क्योंकि ऐसी रेखाएँ हमारी प्रयोगशालाओं में कभी देखने में न आयी थीं। इस विचार से कि नीहारिकाओं में संभवतः नवीन तत्त्व है जिस के कारण ये रेखाएँ बनती हैं। ज्योतिषियों ने उस कल्पित तत्त्व का नाम "नेब्यूलियम" रख दिया। परन्तु भौतिक विज्ञान और रसायन में उन्नति होने पर इतना निश्चित हो गया कि किसी नवीन तत्त्व के लिए प्रकृति में स्थान नहीं है। अब हम जानते हैं कि ये रेखाएँ ऑक्सिजन के कारण उत्पन्न होती हैं। नीहारिकाओं की अपेक्षा पृथ्वी पर परिस्थिति

इतनी विभिन्न हैं कि ऑक्सिजन यहाँ उस प्रकार चमक नहीं पाता जिस प्रकार वह नीहारिका पर चमकता है, परंतु सिद्धांत के बल पर हम देखते हैं कि कल्पित नेब्यूलियम वाली रेखाएँ वस्तुतः ऑक्सिजन की रेखाएँ होंगी।

उत्पत्ति—ग्रहीय नीहारिका को हम तारे का वातावरण समझ सकते हैं जो दूर तक पहुँचा हुआ है। परंतु प्रश्न यह है कि इतना विस्तृत वातावरण उत्पन्न कैसे हुआ होगा। हम जानते हैं कि कुछ तारों में विस्फोट होता है जिससे तारे की चमक बहुत बढ जाती है। इससे प्रायः अदृश्य तारा बहुत चमकीला हो जाता है और ऐसा जान पडता है जैसे नवीन तारा उत्पन्न हो गया हो। ऐसे तारों को नूतन तारा या नवीन तारा (अँग्रेजी में नोवा) कहते हैं। क्या यह सभव है कि ग्रहीय नीहारिकाएँ नूतन तारों के अवशेष है? समर्थन में यह कहा जा सकता है कि लिक वेधशाला के अनुसंधानो से स्पष्ट है कि ये नीहारिकाएँ अब भी फैल रही है, और हम यह जानते हैं कि नूतन तारो के वातावरण फैलते रहते है, और यह भी कि बहुत से नूतन तारे अत्यत तप्त हैं, उसी प्रकार जैसे ग्रहीय नीहारिकाओ के केंद्र वाले तारे। परंतु ग्रहीय नीहारिकाओं को नूतन तारो के अवशेष मानने में एक कठिनाई है। नूतन तारों से प्रक्षिप्त पदार्थ अति वेग से बाहर जाता है। वेग का कई सौ मील प्रति सेकड होना नूतन तारो के वातावरण के लिए कोई असाधारण बात नही है। परतु ग्रहीय नीहारिकाओं के वातावरण में फैलने का वेग केवल लगभग १५ मील प्रति सेकड होता है। यह अवश्य सभव है कि नूतन तारो के वातावरण पहले अधिक वेग से फैलते हो, फिर धीरे-धीरे। यह भी हो सकता है कि कुछ नूतन तारे धीरे-धीरे ही बढ़ते हों। परतु यदि यही मान लिया जाय कि ग्रहीय नीहारिकाएँ उसी वेग से जन्मकाल से ही बढ़ती रही हैं जिस वेग से वे इस समय बढ रही है तो उनकी आयु कुल ३०,००० वर्ष निकलती है। यदि बढ़ने का वेग पहले अधिक था और अब कम है तो उन की आयु और भी कम होगी। यदि तर्क के लिए मान लिया जाय कि उनकी आयु ३०,००० ही वर्ष है तो हम देखते हैं कि अन्य तारों के सामने उनकी आयु एक निमेष मात्र है। यदि ये नीहारिकाएँ इसी प्रकार फूलती रहेंगी तो कुछ हजार वर्षों में —और इतना समय साधारण तारो के जीवन में केवल क्षण भर के तुल्य है— ग्रहीय नीहारिकाएँ अंतर्तारकीय अंतरिक्ष में विलीन हो जायँगी, परंतु संभव है कि तब तक कई नई ग्रहीय नीहारिकाएँ अन्य तारो के विस्फोट से तैयार हो जायँ। इस समय ग्रहीय नीहारिकाओ की सख्या लगभग २०० है।

तारापुंज—आकाश में कहीं-कहीं छोटे-से क्षेत्र में बहुत-से तारे एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। यदि तारो का घनत्व पर्याप्त रहता है तो ऐसे समूहों को तारापुज कहते है। दो-चार तारापुंज कोरी आँख से देखे जा सकते है। इनमें कृत्तिका तारापुज सबसे अधिक प्रसिद्ध है। कोरी आँख से, अर्थात् बिना दूरदर्शक की सहायता लिए, इसमें छः, या यदि दर्शक की दृष्टि अति तीक्ष्ण है तो सात तारे दिखाई पडते है। परतु छोटे दूरदर्शक में इस तारा-पुज में सौ से अधिक तारे दिखाई पड़ते है। एक दूसरा तारा-पुज रोहिणी (ऐल्डिबैरन) नामक तारे को घेरे हुए है। रोहिणी तारा खूब चमकीला है, पुज का नाम वृषभिका (हाईडीज़, Hyades) है। इस तारा-पुज को

भी प्राचीन काल के ज्योतिषियों ने देखा था। केश (कोमा बेरेनिसेज़) तारामंडल में भी एक तारापुंज है जो कोरी आँख से दिखाई पड़ता है, यद्यपि यह मंद चमक का है। लगभग बीस अन्य तारापुंज हैं जिनके तारे कोरी आँख से पृथक्-पृथक् नहीं दिखाई पड़ते; उन्हें देखने पर ऐसा जान पड़ता है जैसे वे नीहारिकाएँ हों।

दूरदर्शक से देखने पर कुछ तारापुंजों में हजारों तारे एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। वे बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं। परंतु इनका महत्त्व केवल इतना ही नहीं है कि वे सुन्दर या विचित्र हैं। इन तारापुंजों के अध्ययन से ज्योतिष के ज्ञान में बड़ी वृद्धि हुई है। तारों की दूरियों के ज्ञान में इनसे विशेष सहायता मिली है। इनकी संरचना तथा तारों की निजी गति से स्पष्ट हो जाता है कि एक तारापुंज के तारे हमसे लगभग एक ही दूरी पर रहते हैं। इसलिए पुंजों के तारों के अध्ययन से चमक और वर्णपट का संबंध, या परिवर्तनशील तारों के चक्रकाल और उनकी वास्तविक चमक का संबंध अधिक निश्चिंतता से स्थापित किया जा सका है। इन तारापुंजों के अध्ययन से विश्व के संगठन का ज्ञान और काली नीहारिकाओं के अस्तित्व का प्रमाण अधिक अच्छा मिल सका है।

दूरदर्शक से ही दिखाई पड़ने वाले तारापुंजों में से अधिकांश का पता मेसिये, विलियम हरशेल और जॉन हरशेल को लग चुका था। मेसिये की सूची में, जो सन् १७८४ में छपी थी, ५७ तारापुंजों का उल्लेख था। तारापुंजों को इंगित करने के लिए या तो मेसिये संख्याओं का या जे० एल० ई० ड्रायर (Dreyer) के न्यू जेनरल कैटलग (एन० जी० सी०, N.G.C.) में दी गयी संख्याओं का प्रयोग किया जाता है।

तारापुंजों की जातियाँ—हरशेल ने तारापुंजों को दो जातियों में विभक्त किया था, खुले तारापुंज और सघन तारापुंज। पहले तो समझा यही जाता था कि ये दो जातियाँ विशेष विभिन्न नहीं हैं, केवल संयोगवश किसी में कम किसी में अधिक तारे होते हैं, परंतु अमरीका के ज्योतिषी हारलो शेपली की खोजों से पता चला है कि इन दो जातियों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंतर है। केवल उनकी संरचना में ही अंतर नहीं है, हमारे विश्व में सघन तारापुंजों का स्थान ही कुछ और है।

खुले तारापुंजों में दो-चार दरजन से लेकर दो-चार हजार तक तारे हो सकते हैं। उनकी आकृति किसी विशेष रूप की नहीं होती और दूरदर्शक से सब तारे सुगमता से पृथक्-पृथक् दिखाई पड़ते हैं। ये तारापुंज आकाशगंगा में बिखरे हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है मानो आकाशगंगा के ही तारे कहीं-कहीं अधिक घनीभूत हो गये हैं और इस प्रकार ये तारापुंज उत्पन्न हुए हैं। आकाशगंगा में ही पाये जाने के कारण इन तारापुंजों को गांग-तारापुंज (गैलैक्टिक क्लस्टर) भी कहते हैं और अब यही नाम अधिक प्रचलित है।

सघन तारापुंजों को अब गोलाकार तारापुंज (ग्लोब्युलर क्लस्टर) कहते हैं। इनमें कई हजार से कई लाख तक तारे रहते हैं। प्रायः सभी का संगठन एक-सा होता है। बीच में

से निरूपित करें तो आलपीनों को चार-चार पाँच-पाँच मील पर एक-दूसरे से रखना पड़ेगा। डेढ़ सौ मील व्यास के गोले में तीन-चार सौ पिन लगा देने से तारापुंज की मूर्ति प्रस्तुत हो जायगी।

अन्य तारापुंज कृत्तिका-तारापुंज से साधारणतः छोटे ही हैं; उनका व्यास १५ से ७५ प्रकाशवर्षों तक होगा। अधिक तारे वाले पुंज कम तारे वाले पुंजों से अधिक विस्तृत हैं। इसलिए प्रत्येक सौ घन प्रकाशवर्ष में तारों की गिनती मोटे हिसाब से प्रायः एक-जैसी ही रहती है।

वर्णपट और निजी गति—विविध तारापुंजों के तारों के वर्णपटों में बड़ी विभिन्नता हो सकती है। कृत्तिका-तारापुंज के तारे प्रायः सभी अतितप्त हैं। उनमें बहुत-से वामन तारे भी हैं। दैत्य और अति दैत्य तारों का प्रायः अभाव है। परंतु वृषभिका तारापुंज (हायाडीज) में कम तापक्रम के दैत्य तारे बहुत-से हैं। ऊपर हम देख चुके हैं कि तारापुंजों में तारों का घनत्व विशेष अधिक नहीं होता। तो भी सूर्य के आस-पास तारों का घनत्व जितना है उसका लगभग १०० गुना घनत्व कृत्तिका-तारापुंज के केंद्र पर है। तारापुंजों के सबसे अधिक चमकीले तारे हमारे सूर्य से बहुधा कई हजार गुना अधिक चमकीले होते हैं। चमकीले तारे साधारणतः मंद तारों से अधिक भारी भी होते हैं। केंद्रीय भारी तारों के आकर्षण के कारण ही पुंज के अन्य तारे छिटकने न पाते होंगे।

तारापुंजों में युग्म तारे भी होते हैं, जिनमें कुछ युग्मों के सदस्य इतने सटे रहते हैं कि वे दूरदर्शक से भी पृथक्-पृथक् नहीं देखे जा सकते, केवल वर्णपट से उनके युग्म तारा होने का पता चलता है। वर्णपट में उन की काली रेखाएँ दोहरी हो जाती हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि तारा युग्म तारा है, एक सदस्य हमारी ओर आ रहा है और दूसरा उलटी ओर जा रहा है। परंतु गाग-तारापुंजों में सेफीइड तारे नहीं मिलते जिनका प्रकाश नियमानुसार घटा-बढ़ा करता है। इसी से इन तारापुंजों की दूरियाँ उतनी सच्चाई से नहीं नापी जा सकती हैं जितनी गोलाकार तारापुंजों की।

एक तारापुंज के विविध तारों की निजी गतियाँ प्रायः बराबर होती हैं; अर्थात् सब तारे एक वेग से समानान्तर दिशाओं में चलते हुए दिखाई पड़ते हैं। अवश्य ही, परस्पर आकर्षण के कारण तारे ठीक-ठीक समानान्तर दिशाओं में न चलते होंगे; परन्तु परस्पर आकर्षण से उत्पन्न वेग सामूहिक वेग से कम होता होगा। कभी-कभी आकाश में दूर-दूर तक बिखरे तारों में एक ही निजी गति देखी जाती है। यदि उनमें और भी कोई समानता हुई तो समझा जाता है कि वे एक ही तारापुंज के तारे हैं, यद्यपि पृथ्वी इस स्थिति में (प्रायः उनके बीच में) है कि वे हमें तारापुंज के समान नहीं दिखाई देते। ऐसे तारापुंज का एक प्रसिद्ध उदाहरण सप्तर्षि-मंडल है। सप्तर्षि के सात तारों में से पाँच और लुब्धक (सिरियस) नामक तारे समानान्तर रेखाओं में और विशेष वेग से भागे जा रहे हैं। उनके वर्णपटों में भी समानता है। इसलिए विश्वास किया जाता है कि ये तारे एक ही तारापुंज के सदस्य हैं, यद्यपि आकाश में ये एक दूसरे से बहुत दूर-दूर पर दिखायी पड़ते हैं। ऐसे तारापुंजों को चल तारापुंज (मूवेबुल क्लस्टर्स) कहते हैं।

न होंगे। उनके गोल दिखायी पड़ने का कारण यह हो सकता है कि हम प्रायः उनको धुरी की दिशा में हैं।

गोलाकार तारापुंजों में वामन तारों का अभाव जान पड़ता है। चमकीले तारे सब लाल अनिर्दंत्य तारे जान पड़ते हैं और शेष तारे साधारण दैत्य। परंतु संभव है कि इन तारापुंजों में भी वामन तारे उपस्थित हों और अधिक दूरी के कारण वे हमको न दिखायी पड़ते हों। गणना से पता चलता है कि इन तारापुंजों में यदि हमारे सूर्य के समान चमकीले तारे होंगे तो हमारे वर्तमान दूरदर्शकों में न दिखायी पड़ेंगे।

विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि गोलाकार तारापुंजों में परिवर्तनशील प्रकाश वाले तारे बहुत होते हैं। अधिकांश का चक्रकाल २४ घंटे से कम होता है। ये सेफीइड तारे ही हैं, परंतु विशेष प्रकार के होने के कारण इनको तारापुंजीय परिवर्तनशील (क्लस्टर टाइप वेरियेबुल्स) कहते हैं। ऐसा समझा जाता है कि व्यास के चक्रकालिक रूप से घटते-बढ़ते रहने से इन तारों का प्रकाश घटता-बढ़ता रहता है।

गोलाकार तारापुंजों के तारों की निजी गतियाँ अभी नहीं नापी जा सकी हैं क्योंकि ये तारापुंज बहुत दूर हैं। परंतु दृष्टिरेखा में कई गोलाकार तारापुंजों के वेग नापे गये हैं क्योंकि यह वेग वर्णपट में रेखाओं के विचलन से तुरंत नापा जा सकता है; अधिक वर्ष तक ठहर कर दुबारा फोटोग्राफ लेने की आवश्यकता नहीं रहती। पता चला है कि गोलाकार तारापुंज ५० से २५० मील प्रति सेकंड के वेग से चलते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मंदाकिनी-संस्था के केंद्र के चारों ओर वे चक्कर लगाते हैं।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि गांग-तारापुंज और गोलाकार तारापुंज दोनों ही का संबंध आकाशगंगा से है—गोलाकार तारापुंज अगांग नहीं कहे जा सकते। तो भी गांग-तारापुंज के नाम से वे ही तारापुंज समझे जाते हैं जो गोलाकार तारापुंज नहीं हैं।

अगांग नीहारिकाओं की जातियाँ—नीचे हबल (Hubble) का वर्गीकरण बताया जाता है। अधिकांश ज्योतिषी इस वर्गीकरणका उपयोग करते हैं। हबल ने इसे सन् १९२६ में प्रस्तावित किया था। इस वर्गीकरण में उन सब नीहारिकाओं का ध्यान रक्खा गया है जो इतनी चमकीली हैं कि फोटोग्राफ में ही उनकी संरचना का कुछ पता चलता है। ऐसी नीहारिकाओं में से लगभग ९८ प्रतिशत इस वर्गीकरण के अंतर्गत हैं। केवल लगभग २ प्रतिशत इस वर्गीकरण में नहीं आ पाती हैं। उनको अनियमित (इर्रेगुलर) नीहारिका कहते हैं। अत्यंत मंद नीहारिकाओं की पहचान केवल इसलिए हो पाती है कि फोटोग्राफ में वे तारों की तरह तीक्ष्ण बिंदु-सी नहीं दिखाई पड़ती, वे नाममात्र विस्तृत रहती हैं। परंतु उनके संगठन का कुछ पता न रहने के कारण इस वर्गीकरण में उनपर विचार नहीं किया गया है। तोभी विश्वास किया जाता है कि उनकी संरचना भी प्रायः वैसी होगी जैसी अन्य नीहारिकाओं में देखी गयी है।

प्रथम वर्ग में वे अगांग नीहारिकाएँ रक्खी गई हैं जो हमें गोल और बिना भुजाओं की दिखाई पड़ती हैं। इस वर्ग को ई० (ई शून्य, E0) से सूचित किया जाता है। ई० वस्तुतः इस बात का सूचक है कि इन नीहारिकाओं में दीर्घवृत्तता शून्य के बराबर है। इसके बाद ई१ ई२, इत्यादि, ई७ तक के वर्ग हैं। इन वर्गों में रक्खी जाने वाली नीहारिकाएँ उत्तरोत्तर अधिक
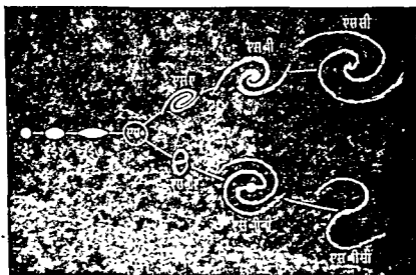
नीहारिकाओं का वर्गीकरण

भुजरहित नीहारिकाओं का वर्गीकरण उनके चिपटेपन के अनुसार किया गया है। भुजावाली नीहारिकाओं की दो जातियाँ हैं और प्रत्येक में वर्गीकरण भुजाओं के न्यूनाधिक विकसित रहने के अनुसार किया गया है।

दीर्घवृत्ताकार हैं। यदि किसी दीर्घवृत्त (एलिप्स) का दीर्घाक्ष क है और लघु अक्ष ख, तो उस दीर्घवृत्त की दीर्घवृत्तता सूचक संख्या क—ख को क से भाग देकर १० से गुणा करने पर प्राप्त होता है। उसी को ई के साथ लिख देने से नीहारिका का वर्ग ज्ञात होता है। आकाश में ई७ से अधिक चिपटी नीहारिकाएँ दिखाई नहीं पड़तीं।

की खोज की। इनके सिद्धांत का ब्योरेवार विवरण आगामी अध्याय में दिया जायगा। संक्षेप में, यदि नीहारिका प्रायः गोलाकार हो और धीरे-धीरे नाच रही हो तो संकुचित होने पर वह अधिक वेग से नाचने लगेगी। इसलिए उसका चिपटापन अधिक हो जायगा। पास-पड़ोस के अन्य पिंडों के आकर्षण से भूमध्य रेखा के पास ज्वार-भाटा उठेगा और तब कुछ द्रव्य छटकने लगेगा। भुजाएँ इसी द्रव्य से बनेंगी। ये भुजाएँ सर्पिलाकार होंगी, परंतु स्थायी न रहेंगी। वे कई टुकड़ों में टूट जायेंगी और प्रत्येक टुकड़े से एक गोल तारा बन जायगा। परंतु इस क्रिया में करोड़ों वर्ष लगेंगे। इसलिए हम इस सिद्धांत के सत्य होने, न होने, का प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं पा सकते। यदि सिद्धांत ठीक हो तो कई सौ वर्षों में भी नीहारिका के रूप में इतना कम परिवर्तन होगा कि हम कह न सकेंगे कि सिद्धांत ठीक है या नहीं।

वितरण—अगांग नीहारिकाओं का प्रत्यक्ष वितरण पहले बताया जा चुका है। विचार करने से पता चलता है कि संभवतः ये नीहारिकाएँ सर्वत्र समरूप से छिटकी हुई हैं। यह अवश्य सत्य है कि आकाशगंगा के पास ये कम दिखाई देती हैं, परंतु संभव है कि मंदाकिनी-संस्था में बिखरी धूलि के कारण आकाशगंगा के धरातल में ये मिट जाती हैं। माउंट विलसन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से लिये गये फोटोग्राफों में नीहारिकाओं को सावधानी से गिनने पर पता चला कि आकाशगंगा के धरातल के समीप जाने में अगांग नीहारिकाओं की संख्या अत्यंत नियमित रूप से घटती है। घटने का नियम वस्तुतः वही है, जो यह मानने से हमें मिलता है कि हमारे चारों ओर धूलि का वातावरण है जिसमें प्रकाश वातावरण की गहराई के अनुपात में घटता है। आकाशगंगा की दिशा में दूरस्थ नीहारिकाओं के प्रकाश को बहुत दूर तक इस धूलि में चलना पड़ता है। इसलिए वे हमें दिखाई नहीं पड़तीं। अनुमान किया गया है कि आकाशगंगा के धरातल से समकोण बनानेवाली दिशा में—अर्थात् गांग ध्रुवों की दिशा में—प्रकाश का पचमांश मिट जाता है। अन्य दिशाओं में इससे अधिक प्रकाश मिट जाता है, यहाँ तक कि आकाशगंगा की दिशा में अगांग नीहारिकाएँ दिखाई ही नहीं पड़ती हैं। गांग ध्रुवों की दिशा में केवल अधिक ही नहीं, झुंड-के-झुंड नीहारिकाएँ भी दिखाई पड़ती हैं। कुछ झुंडों में १०० से अधिक नीहारिकाएँ हैं। एक में ५०० से अधिक नीहारिकाएँ हैं। इन झुंडों को नीहारिका-पुंज कहना अधिक उत्तम होगा।

ऊपर आकाशीय वितरण की चर्चा की गई है। जब हम गहराई पर भी विचार करते हैं, अर्थात् जब हम नीहारिकाओं की दूरी पर भी विचार करते हैं, तो पता चलता है कि जहाँ तक हमारे दूरदर्शकों की पहुँच है, वहाँ तक नीहारिकाएँ अंतरिक्ष में सर्वत्र एक रूप से बिखरी हुई हैं। इस का प्रमाण यह है कि जब हम इतना कम प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) देकर फोटोग्राफ लेते हैं कि दसवीं श्रेणी तक की नीहारिकाओं का फोटोग्राफ उतरे, फिर इतना प्रकाशदर्शन देते हैं कि बारहवीं श्रेणी तक की नीहारिकाओं का फोटोग्राफ उतरे, और इसी प्रकार चौदहवीं, सोलहवीं आदि श्रेणियों तक की नीहारिकाओं के फोटोग्राफ उतारे जाते हैं, और इन सब श्रेणियों तक की नीहारिकाओं को गिनते हैं तो उनकी गिनती उसी क्रम से बढ़ती है जिस क्रम से नीहारिकाओं के सर्वत्र एक समान घनत्व से बिखरे रहने पर बढ़ती। इससे प्रत्यक्ष हो जाता है कि

अगांग नीहारिकाओं की दुनिया सीमित नही है । स्मरण रखना चाहिए कि जब इसी रीति का प्रयोग करके तारों के बिखरे रहने का पता लगाया गया था तब पता चला था कि तारे बहुत दूर तक नही फैले हैं । वे सीमित स्थान में ही बिखरे हैं । इसका समर्थन पीछे तब हुआ जब उनकी दूरियां नापी जा सकी और पता चला कि तारे सब हमारी ही मंदाकिनी-संस्था में हैं ।

अगांग नीहारिकाएँ अंतरिक्ष में कितनी दूर-दूर पर बिखरी हुई हैं, इसका अनुमान निम्न-लिखित युक्ति से किया जा सकता है । यदि हम पैमाने के अनुसार इन नीहारिकाओं का निरूपण करना चाहें और हम दिल्ली शहर को अपनी मंदाकिनी-संस्था का केंद्र मानें तथा अपने निकटतम द्वीपविश्व को मेरठ पर रक्खें तो इस पैमाने पर हमारी मंदाकिनी-संस्था दिल्ली शहर से कुछ ही बड़ी ठहरेगी । मेरठ शहर हमारे निकटतम विश्वद्वीप को निरूपित करने के लिए काफी बड़ा है । हम देखते हैं कि द्वीप-विश्व बहुत दूर-दूर पर छिटके हुए हैं और उनके बीच बहुत-सा स्थान खाली छूटा है । साथ ही सब ज्ञात द्वीप-विश्व इतनी दूर तक फैले हुए हैं कि पूर्वोक्त पैमाने पर सबको पृथ्वी के बराबर गोले में निरूपित नही किया जा सकेगा ; पृथ्वी छोटी पड़ेगी ।

नीहारिका-पुंज—ऊपर कहा गया है कि नीहारिकाएँ सर्वत्र समरूप से बिखरी हुई हैं, परंतु यह बात तभी सत्य है जब मंद और चमकीली सभी नीहारिकाओं पर विचार किया जाय । यदि केवल अपेक्षाकृत चमकीली ही नीहारिकाओं पर ध्यान दिया जाय तो पता चलता है कि कई स्थानों पर चमकीली नीहारिकाओं का घना समूह है । २५ नीहारिका-पुंजों में से प्रत्येक में १०० से अधिक नीहारिकाएँ हैं । लगभग १०० नीहारिका-पुंज एसे हैं जिनमें १२ से अधिक नीहारिकाएँ हैं । कई हजार पुंजो म केवल दो या तीन नीहारिकाएँ हैं, परंतु उनमें भौतिक सबंध स्पष्ट जान पडता है । आकाशगगा से आकाश दो लगभग बराबर गोलार्द्धों में बँट जाता है । यदि केवल चौदहवी श्रेणी तक की नीहारिकाओं की ही गिनती की जाय तो उत्तरी गोलार्ध में दक्षिणी गोलार्ध की अपेक्षा लगभग डेवढी नीहारिकाएँ हैं, यद्यपि २०वी श्रेणी तक की नीहारिकाओ को भी सम्मिलित करने पर दोनो गोलार्धों में नीहारिकाओ की संख्या प्रायः बराबर है, कुछ ज्योतिषियो को इसका प्रमाण मिला था कि जिस प्रकार आकाश में ऐसी मेखला है जिसमें तारो की संख्या बहुत अधिक है और जिसे हम आकाशगंगा कहते हैं, उसी प्रकार आकाश में ऐसी भी एक मेखला है जिसमें अगाग नीहारिकाओ की सख्या बहुत अधिक है । परतु जब शक्तिशाली दूरदर्शको से मद अगाग नीहारिकाओ का भी फोटोग्राफ खीचा गया और उन्हें गिना गया तब ऐसी किसी मेखला के अस्तित्व का प्रमाण नही मिला । संभवत सयोगवश ही चमकीली अगांग नीहारिकाएँ कही अधिक, कही कम हैं ।

स्थानीय समूह—निकटतम नीहारिकाओ की दूरियो पर ध्यान देने से ऐसा जान पड़ता है कि अपनी मदाकिनी-सस्था और १२ अन्य अगाग नीहारिकाओ का एक समूह है जो शेष नीहारिकाओ से पर्याप्त रूप से पृथक है । इस समूह को बहुधा स्थानीय समूह (लोकल ग्रूप) कहते हैं । इस समूह में हमारी मदाकिनी-सस्था, इसकी दो साथिनियाँ, अर्थात दोनों मैगिलन मेघ, देवयानी नीहारिका और उसकी दो छोटी साथिनियाँ, और एक पडोसिन—त्रिभुज (ट्राइऐंगुलम)

तारामंडल की नीहारिका—और चार अन्य वामन नीहारिकाएँ हैं। इनके अध्ययन से बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं जो संभवतः अन्य नीहारिकाओं के लिये भी सत्य होंगी। स्थानीय समूह की सात सदस्याओं का वर्णन पहले दिया जा चुका है। यहाँ वामन सदस्याओं का संक्षिप्त वर्णन दिया जायगा।

एन० जी० सी० ६८२२ और आई० सी० १६१३ दो छोटी-छोटी अगांग नीहारिकाएँ हैं जो वर्गीकरण के अनुसार अनियमित नीहारिकाएँ हैं। इनमें अति दैत्य तारे भी कई एक हैं। इन दो वामन नीहारिकाओं के अतिरिक्त दक्षिणी आकाश में भट्ठी (फॉर्नैक्स) और मूर्तिकार (स्कल्पटर) तारा मंडलों में भी एक-एक वामन नीहारिकाएँ हैं जो दीर्घवृत्ताकार हैं। उनमें अति दैत्य तारे नहीं हैं। इन वामन नीहारिकाओं की दूरी २ से ७ लाख प्रकाशवर्ष हैं और इसलिये ये हमारे स्थानीय समूह में हैं, यद्यपि इस स्थानीय समूह के अन्य सदस्यों से पूर्णतया पृथक हैं। इन चार वामनों में से प्रथम दो अनियमित नीहारिकाएँ हैं, और उनका संगठन बहुत-कुछ मैगिलन मेघों की तरह हैं। भट्ठी (फॉर्नैक्स) वाली वामन नीहारिका निसंदेह अगांग नीहारिका है, परंतु उस का संगठन गोलाकार तारा पुंज-सा है; अंतर इतना ही हैं कि वह गांग तारा पुजों से बहुत बड़ा हैं और उसमें तारे इतने घने नहीं बिखरे हुये हैं जितने वे साधारणतः गोलाकार तारापुंजों में रहते हैं। तारा-घनत्व में लगभग १/७५ गुने का अंतर हैं और व्यास में १० गुने का। मूर्तिकार (स्कल्पटर) वाली नीहारिका भट्ठी (फॉर्नैक्स) वाली नीहारिका-जैसी हैं।

इन वामन नीहारिकाओ से पता चलता हैं कि आकाश में करोड़ों वामन नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत पास में ही होंगी, परतु अन्य नीहारिकाओ से छोटी होने के कारण वे हमको नही दिखाई पडती। सप्तर्षि, सिंह और षडांश (सेक्सटैन्स) तारा मडलों में भी वामन नीहारिकाएँ दिखाई पड़ती है जिनकी दूरी १२ लाख प्रकाशवर्ष आँकी गयी है। जैसे मैगिलन मेघ की नीहारिकाएँ हमारी मदाकिनी-संस्था की साथिनियाँ हैं और देवयानी नीहारिका के पास वाली वामन नीहारिकाएँ देवयानी नीहारिका की साथिनियाँ हैं, संभव हैं उसी प्रकार सब वामन नीहारिकाएँ बड़ी नीहारिकाओ के पड़ोस ही में पाई जाती हों; परंतु अभी कुछ निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। अधिक शक्तिशाली यंत्र बन रहे हैं और भविष्य में अवश्य कई नयी बातों का पता चलेगा।

कन्या-तारामंडल में नीहारिका-पुंज—तेरहवी श्रेणी तक की नीहारिकाओं के फ़ोटोग्राफ़ो में सबसे प्रमुख नीहारिका-पुंज कन्या-तारामंडल में हैं। इसके केंद्र का विषुवांश साढ़े बारह घंटा हैं और क्रांति $+12^\circ$। इस नीहारिका-पुंज का अधिकांश कन्या-तारामंडल में हैं परतु कुछ भाग बहर तक भी चला जाता हैं। विषुवत के समीप होने के कारण उत्तरी तथा दक्षिणी सभी वेधशालाओ से इसका अध्ययन किया गया हैं। फिर, आकाशगंगा से कुछ दूर होने के कारण प्रकाश-शोषण भी इतना नहीं हैं कि कोई कठिनाई पड़े। अपेक्षाकृत समीप होने के कारण इस नीहारिका-पुज की प्रत्येक सदस्या का अध्ययन साधारण शक्ति के दूरदर्शकों से भी किया जा सकता हैं।

एस सी (Sc) वर्ग कहा जाता है। माउंट विलसन के १०० इंच वाले दूरदर्शक से इनमें से अधिकांश नीहारिकाओं में पृथक्-पृथक् तारे देखे गये हैं। ये तारे अतिदैत्याकार जाति के है। कम चमकीले तारे अभी हमारे बड़े से बड़े दूरदर्शकों मो में दिखाई नहीं पड़ते। कुछ चिपटी गोलाकार नीहारिकाओं में पृथक्-पृथक् तारे नहीं देखे जा सके हैं, संभवतः इसलिए कि उनमें अतिदैत्याकार तारे हैं ही नहीं।

इस नीहारिकापुंज की कई नीहारिकाओं का दृष्टिरेखीय वेग नापा गया है। इससे पता चलता है कि पुंज हमसे, लगभग ७०० मील प्रति सेकंड के वेग से दूर जा रहा है। परंतु जब नीहारिकाओं के वेगों पर अलग-अलग विचार किया जाता है तब पता चलता है कि ये नीहारिकाएँ एक दूसरे के हिसाब से भी बहुत वेग से चलती हैं। १५०० मील प्रति सेकंड तक का वेग भी कुछ नीहारिकाओं में मिला है। इन वेगों के आधार पर प्रत्येक नीहारिका की औसत द्रव्यमान का भी अनुमान लगाया गया है। उत्तर आश्चर्यजनक है कि प्रत्येक नीहारिका का औसत द्रव्यमान २ खरब सूर्यों के बराबर है। यह देखते हुए कि इन नीहारिकाओं से कुल कितना प्रकाश आता है इतना द्रव्यमान होना असंभव-सा जान पड़ता है। अधिक खोज की आवश्यकता प्रतीत होती है। इन नीहारिकाओं के वर्ग रट और रंग की तुलना से प्रत्यक्ष हो जाता है कि नीहारिकाएँ धूमिल अंतरिक्ष के कारण विशेष ललछौंह नहीं हो गयी हैं।

नीहारिकाओं की सर्पिल भुजाओं की समस्या अभी पूर्णतया हल नहीं हुई है। पहले बताया जा चुका है कि संभवतः वेग से घूमने के कारण कुछ द्रव्य छटक जाता है और वही भुजाओं का रूप धारण कर लेता है। परंतु कन्या-नीहारिकाओं में देखा गया है कि सर्पिल और असर्पिल नीहारिकाओं की नापों में विशेष अंतर नहीं है। इसलिए ऐसी धारणा होती है कि केंद्र से छटक कर द्रव्य बाहर संभवतः न निकला होगा ; कदाचित् बाहरी भागों के द्रव्य के घनीभूत होने से भुजाएँ बनी होंगी।

एक कठिनाई और भी है। कुछ नीहारिकाओं में भुजाएँ कुछ असाधारण होती हैं। उदाहरणतः, एक नीहारिका में एक भुजा तो साधारण आकार की है, परंतु दूसरी भुजा मुड़कर अंगूठी की तरह बंद हो गई है। अभी तक कोई भी ऐसा सिद्धांत नहीं बन सका है जो इन सब बातों को समझा सके। यह अवश्य कहा जा सकता है कि दूसरा कोई पिंड कभी आकार इस नीहारिका से भिड़ गया होगा जिससे भुजा टूट गई होगी, या जन्म से ही एक भुजा टूटी रही होगी, परंतु इन सब बातों से संतोष नहीं होता। संभव है भविष्य में हमारा ज्ञान इतना बढ़े कि हम इन सब बातों को संतोषजनक रीति से समझा सकें।

कन्या-नीहारिका-पुंज की सीमा तीक्ष्ण नहीं है। नराश्व (सेंटॉरस) तारामंडल की ओर तीस डिगरी तक कन्या-नीहारिकाओं की तरह की ही नीहारिकाएँ मिलती हैं। उत्तर की ओर भी कई नीहारिकाएँ कन्या-नीहारिकाओं की तरह चमकीली हैं। इसलिए कभी-कभी संदेह होता है कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि नीहारिकाओं का एक स्थानीय बादल-सा झुंड है जिसमें नीहा-

वे हम से लगभग $१०^{२१}$ अर्थात्

१०,००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मील

पर हैं! उनसे पृथ्वी तक प्रकाश के पहुँचने में डेढ़ करोड़ वर्ष से अधिक समय लगा है।

नीहारिकाओं का घूमना—सर्पिल नीहारिकाओं का फ़ोटोग्राफ़ देखते ही ऐसा जान पड़ता है कि वे घूमती होंगी। जिन नीहारिकाओं के धरातल में पृथ्वी पड़ती है और जो इस कारण से हमें बहुत चिपटी या प्रायः एक रेखा-सी दिखायी पड़ती हैं उन के दोनों छोरों का वेग, दृष्टिरेखा में, वर्णपट से ज्ञात किया जा सकता है। वेग से तुरंत पता चलता है कि नीहारिका अपने अक्ष पर घूम रही है। कई नीहारिकाओं के केंद्रीय भाग भुजाओं के धरातल में घूमते हुए पाये गये हैं। प्रकाश कम होने के कारण केवल कुछ ही नीहारिकाओं के घूमने की जाँच की जा सकी है। देवयानी और त्रिभुज तारामंडलों की नीहारिकाओं के घूमने का पक्का प्रमाण मिला है। देवयानी नीहारिका प्रायः इस प्रकार घूमती है जैसे वह ठोस हो, अर्थात् बाहर के भाग केंद्रीय भागों की अपेक्षा अधिक वेग से चलते हैं। इस नीहारिका का एक चक्रकाल लगभग ९ करोड़ वर्ष का है, त्रिभुज तारामंडल की नीहारिका का केंद्रीय भाग ठोस की तरह घूमता है, परंतु दूरस्थ भाग कम वेग से घूमते हैं।

घूमने के वेग जानने से नीहारिकाओं के द्रव्यमान का भी अनुमान किया जा सकता है। गणना से पता चलता है कि देवयानी-नीहारिका का द्रव्यमान हमारे सूर्य के द्रव्यमान का ९५ अरब गुना होगा। विश्वास किया जाता है कि नीहारिकाओं के औसत द्रव्यमान से यह बहुत अधिक है। त्रिभुज तारामंडल वाली नीहारिका का द्रव्यमान २ अरब सूर्यों के बराबर है। संभवतः अन्य नीहारिकाओं का द्रव्यमान इसी तरह का होगा। अपनी मंदाकिनी-संस्था का द्रव्यमान अन्य रीतियों से आँका गया है और अनुमान किया गया है कि कुल द्रव्यमान लगभग २ खरब सूर्यों के बराबर होगा। परंतु द्रव्यमानों के अनुमान में कई बातें अनिश्चित रहती हैं। इसलिए द्रव्यमान बतायी गयी मात्रा के आधे से लेकर दुगुने तक हो सकता है। स्पष्ट है कि देवयानी-नीहारिका और हमारी मंदाकिनी-संस्था के द्रव्यमान मोटे हिसाब से लगभग बराबर हैं।

सर्पिल नीहारिकाएँ किस दिशा में घूमती हैं? इस प्रश्न के दो उलटे उत्तर दो ज्योतिषियों को मिले। एक का कहना था कि सर्पिल नीहारिकाएँ इस प्रकार घूमती हैं कि पूँछ की नोक पीछे-पीछे चलती है; अर्थात्, यदि सर्पिलाकार भुजाओं की तुलना घड़ी की कमानी से की जाय तो नीहारिकाएँ इस प्रकार घूमती हैं कि कमानी कस उठेगी। दूसरे ज्योतिषी ने एक नीहारिका को उलटी दिशा में घूमते हुए पाया। परंतु बहुत छान-बीन के बाद सिद्ध हुआ कि बात ऐसी नहीं है। सब सर्पिल नीहारिकाएँ इस प्रकार घूमती हैं कि उन की भुजाएँ उनसे सिमटती हुई जान पड़ेंगी। इस संबंध में केवल ११ नीहारिकाओं का अध्ययन हो सका है। नीहारिकाओं के अत्यंत दूर होने के कारण और घूमने का चक्रकाल अत्यंत लम्बा होने के कारण इन सब नीहारिकाओं के बारे में ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो सका है। परंतु जिन-जिन नीहारिकाओं में घूमने

का इस प्रकार [illegible] से सिद्ध है उस रूप में यही देखा गया है कि पृथ्वी की स्थिति ऐसी है जिसे मुख्यतः केंद्र पर स्थित हुई जान पड़ेगी।

सारे देशों के ज्योतिषी [illegible] कहते हैं कि सूर्य [illegible] का कोयला है; परंतु गणना से पता चलता है कि यदि सूर्य का कुल द्रव्य पत्थर का कोयला और उसके जलने भर ऑक्सिजन होता तो भी सूर्य आज से न जाने कब का जल कर भस्म हो गया होता। परन्तु हम पुरातत्त्ववेत्ताओं (जियोलॉजिस्टों) से जानते हैं कि उन पत्थरों की आयु जिन में पौधों या जन्तुओं के अवशेष मिलते हैं, एक अरब वर्ष है। अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि पृथ्वी पर [illegible] प्रकार के जीव [illegible] पानी के लगभग [illegible] पर मर जाते हैं और वहाँ से अधिक ठंडे लगभग [illegible] पर भी जीवित नहीं रह सकते। इसलिए आज से १ अरब वर्ष पहले भी हमारा सूर्य बहुत-कुछ आज-जैसा रहा होगा; न वह इतना गरम रहा होगा कि उस की आँच से पृथ्वी पर पानी खौलने लगता रहा होगा; न वह इतना ठंडा रहा होगा कि पृथ्वी बर्फ की तरह ठंडी रही होगी। परन्तु यदि कोयला जलने से सूर्य में ताप उत्पन्न होता रहा होता तो जितनी गर्मी सूर्य से निकलती है उतनी के लिए सूर्य को कुछ हजार वर्षों में ही भस्म हो जाना चाहिए था। इसलिए सूर्य में अग्नि होने का सिद्धान्त असत्य हो जाता है। लगभग सौ वर्ष हुए जर्मन वैज्ञानिक हेल्महोल्ट्स (Helmholtz) ने सुझाया कि सूर्य में गरमी संकुचन के कारण उत्पन्न होती है। उसने सिद्ध किया कि यदि सूर्य की त्रिज्या प्रतिवर्ष १४० फुट घटती जाय तो इतनी गरमी उत्पन्न होती रहेगी कि सूर्य ठंडा न होने पाए। उस समय तो सिद्धान्त ठीक जँचा, परंतु जब इसकी गणना की गयी कि अनंत दूरी से संकुचित होकर सूर्य वर्तमान अवस्था में कितने समय में पहुँचा होगा और यह मान लिया गया कि संकुचन का वेग सदा इतना था कि सूर्य कभी भी वर्तमान अवस्था से बहुत अधिक ठंडा या गरम नहीं था, तो पता चला कि सूर्य इस प्रकार कुल ५ करोड़ वर्ष ही चमकता रहा होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार आज से दो करोड़ वर्ष पहले सूर्य इतना बड़ा रहा होगा कि वह पृथ्वी को छूता रहा होगा। पुरा-वनस्पति-विज्ञान से प्राप्त पृथ्वी की आयु की तुलना इस आयु से करने पर तुरत पता चलता है कि संकुचन-सिद्धांत कभी ठीक हो नहीं सकता।

इधर ज्योतिषी इस उधेड़-बुन में पड़े रहे कि सूर्य ठंडा क्यों नहीं हो जाता; उधर प्रसिद्ध आधुनिक वैज्ञानिक आइनस्टाइन ने अपना सापेक्षवाद प्रकाशित किया। इस सिद्धांत से बहुत-सी बातें जो अन्य किसी रीति से समझ में नहीं आती थीं, समझ में आने लगीं। एक परिणाम इस सिद्धान्त का यह भी है कि द्रव्य और शक्ति मौलिकतः एक है। द्रव्य को शक्ति में परिवर्तन किया जा सकता है और जब ऐसा किया जायगा तो थोड़े-से द्रव्य से महान् शक्ति उत्पन्न होगी। ऐटम बम का बनना इस सिद्धांत का प्रत्यक्ष प्रमाण है। यदि सूर्य में लगभग ४२ लाख टन द्रव्य प्रति सेकंड शक्ति में परिवर्तित होता हो तो सूर्य ठंडा न होने पायेगा। प्रथम दृष्टि में तो यह जान पड़ता है कि ४२ लाख टन द्रव्य बहुत होता है और प्रति सेकंड इतना द्रव्य नष्ट होता रहेगा तो सूर्य शीघ्र ही समाप्त हो जायगा; परन्तु बात ऐसी नहीं है। सूर्य का कुल द्रव्यमान इतना अधिक है कि प्रति सेकंड ४२ लाख टन खर्च होने पर १५ अरब वर्षों में कुल द्रव्य का एक हजारवें भाग से कुछ

कम ही खर्च होगा। इसलिए बहुत संभव है कि सूर्य में गरमी इसी प्रकार उत्पन्न होती हो। या यों कहिए कि सूर्य पर प्रति सेकंड कई करोड़ ऐटम बम बनते और छूटते रहते हैं।

परंतु एक कठिनाई के हल होते ही दूसरी यह उपस्थित होती है कि सूर्य अथवा अन्य तारों में द्रव्य का शक्ति में परिवर्तन होता ही क्यों है; वही परिवर्तन पृथ्वी पर क्यों नहीं होता रहता? इसकी भी खोज की गयी है। वैज्ञानिकों का विचार है कि यह सूर्य के भीषण तापक्रम के कारण होता है। स्ट्रोमग्रेन (Stromgren) ने गणना से पता लगाया है कि सूर्य के केंद्र का तापक्रम लगभग २ करोड़ डिगरी सेंटीग्रेड होगा। सूर्य का केंद्र गैसीय होगा, परंतु वहाँ घनत्व पारे का आठगुना होगा। वहाँ पर निपीड (प्रेशर) हमारे वायुमंडल के निपीड का १० अरब गुना होगा। ऐसी अकल्पनीय परिस्थिति में सभी ऐटम (अणु) टूटने लगते हैं। सभी ऐटमों के भीतर प्रोटन और नाभियाँ (न्यूक्लिआई) रहती हैं और उनके नवीन संगठन से नवीन ऐटम बनते हैं। कौन-सा तत्व किस तत्व में परिवर्तित होगा, यह इस पर निर्भर है कि तापक्रम, निपीड आदि क्या है।

सापेक्षवाद और प्रोटन आदि का सिद्धांत अभी बहुत नया है। प्रति दिन नवीन बातों का पता चलता रहता है और संभव है किसी दिन ऐसी बातों का पता चले कि इन सब सिद्धांतों को बदलना पड़े; परंतु इस समय तारों की चमक का रहस्य यों समझाया जा सकता है कि प्रारंभ में तारे अति विस्तृत और अति क्षीण गैस के विशालकाय गोले होते हैं। गुरुत्वाकर्षण के कारण वे सिमटने लगते हैं, और, जैसा हेल्महोल्ट्स का सिद्धांत बताता है, उनमें गरमी उत्पन्न होने लगती है। जब तापक्रम लगभग ४ लाख डिगरी सेंटीग्रेड हो जाता है तो भारी हाइड्रोजन (हेवी हाइड्रोजन) और प्रोटनों में प्रतिक्रिया होने लगती है। जब तक भारी हाइड्रोजन रहता है तब तक यह क्रिया जारी रहती है और तारे का संकुचन रुका रहता है। सब भारी हाइड्रोजन के समाप्त हो जाने पर तारा गुरुत्वाकर्षण के कारण फिर सकुचित होने लगता है। जब तापक्रम २० लाख डिगरी हो जाता है तब लिथियम के ऐटम टूटते हैं, फिर बेरिलियम और बोरन के। इन सब के चुक जाने पर तारा फिर संकुचित होने लगता है और तापक्रम बढ़ने लगता है। जब तापक्रम २ करोड़ डिगरी हो जाता है तो कारबन के ऐटमों की पारी आती है। इसी प्रकार कभी संकुचन से, कभी ऐटमों के टूटने से, तापक्रम स्थिर रहता है या कुछ बढता जाता है।

जब सब ऐसे पदार्थ समाप्त हो जाते हैं जिनके ऐटमों के टूटने से ताप उत्पन्न हो सकता है और संकुचित होते-होते तारा ऐसा सघन हो जाता है कि अब और संकुचन नहीं हो सकता, तो क्या होता है? सिद्धांत बताता है कि तब तारे ठंडे होने लगते हैं। वामन तारे वे हैं जो महत्तम तापक्रम और घनत्व प्राय: प्राप्त कर चुके हैं। वे अब धीरे-धीरे ठंडे हो जायेंगे और अन्त में अदृश्य हो जायेंगे। लगभग ४० ऐसे वामन तारे हमें ज्ञात हैं जो बहुत ही अधिक घनत्व के हैं। कुछ का घनत्व तो पानी से १ लाख गुना अधिक है। इनमें सभवत: सब ऐटम टूट-फूट गये हैं और एलेक्ट्रन और नाभियाँ बहुत कम स्थान में ठसाठस भर गयी हैं।

हमारे सूर्य का भविष्य क्या है? यह भी इस सिद्धांत पर बताया जा सकता है। गुलिवर की यात्राओं के लेखक ने ज्योतिषियों की खिल्ली उड़ाते हुए लिखा है कि एक बार गुलिवर लपूटा देश में पहुँचा जहाँ यूरोप के प्रान्तों की अपेक्षा ज्योतिष अधिक उन्नत अवस्था में था। गुलिवर ने देखा कि वहाँ के ज्योतिषियों का मत था कि "सूर्य अपनी रश्मियों को प्रति दिन खर्च करता है, परंतु उसे कोई भोजन नहीं मिलता; इसलिए अन्त में इसका पूर्णतया क्षय हो जायगा और इसका नामो-निशान भी न रहेगा।" * * * "उन्हें बराबर इन सब आसन्न संकटों और इसी प्रकार की अन्य आशंकाओं से इतना डर लगा करता है कि वे न तो अपने बिस्तर पर सुख से सो सकते हैं और न तो उन्हें जीवन के सामान्य आनंद उत्सवों में कोई रुचि रहती है। प्रातःकाल जब उनकी भेंट किसी मित्र से होती है तो पहला प्रश्न सूर्य के स्वास्थ्य के विषय में होता है, 'उदय या अस्त होते समय वह कैसा था?' "

परंतु आधुनिक सिद्धांत के अनुसार सूर्य में अभी पर्याप्त द्रव्य है जिससे वह अधिक तप्त हो सकता है। संभवतः वहाँ का हाइड्रोजन धीरे-धीरे हीलियम में परिवर्तित होगा और इससे तापक्रम धीरे-धीरे बढ़ेगा। सूर्य तब अधिक चमकीला और अधिक गरम हो जायगा। इससे पृथ्वी भी गरम हो जायगी। एक-एक करोड़ वर्ष में पृथ्वी का तापक्रम लगभग एक डिगरी बढ़ेगा। समय पाकर पृथ्वी का सब जल सूख जायगा और यहाँ जीवन का लोप हो जायगा। आठ-दस अरब वर्षों में सूर्य महत्तम तापक्रम और चमक पर पहुँचेगा और तब उसकी वास्तविक चमक लुब्धक (सिरियस) नामक तारे के वर्तमान वास्तविक चमक से भी अधिक हो जायगी। फिर सूर्य की चमक धीरे-धीरे घटेगी। यह श्वेत वामन जान पड़ेगा और दस पंद्रह करोड़ वर्षों में ठंढा हो जायगा।

पञ्चम अध्याय

उत्पत्ति

अगांग नीहारिकाएं हम से दूर जा रही हैं—अनुभव की बात है कि जब कोई बाइसिकल पर तेजी से हमारी ओर आता है और हमारी बगल से होता हुआ निकल जाता है तो घंटी के स्वर में अंतर पड़ जाता है। कारण यह है कि जब घंटी हमारी ओर आती रहती है तब हमारे पास उससे प्रति सेकंड ध्वनि की अधिक लहरें पहुँचती हैं। जब घंटी हम से दूर जाती रहती है तब प्रति सेकंड हमारे पास कम लहरें पहुँचती हैं। लहरों की संख्या पर ही ध्वनि का सुर निर्भर है। इसी लिए जब घंटी हमारी ओर आती रहती है तब उसका स्वर तीव्र जान पड़ता है; जब घंटी दूर जाती रहती है तब उसका स्वर कोमल जान पड़ता है। वस्तुतः स्वर में कितना अंतर पड़ा इसे नाप कर हम घंटी का वेग जान सकते हैं। स्वर के अंतर और ध्वनि उत्पादक के वेग का संबंध बताने वाला नियम ही डॉपलर सिद्धांत (Doppler's principle) कहलाता है।

जो बात ध्वनि के लिए सत्य है वही प्रकाश के लिए भी सत्य है; प्रकाश-उत्पादक के वेग के कारण प्रकाश का रंग बदल जाता है। पहले बताया जा चुका है कि तारों के वर्णपटों में काली रेखाएँ भी होती हैं। प्रकाश के वेग के अनुसार ये रेखाएँ अपने स्थान से हट जाती हैं। यदि ये रेखाएँ लाल की ओर हटें तो समझना चाहिए कि प्रकाश का उद्गम स्थान हमसे दूर जा रहा है; यदि ये रेखाएँ उलटी दिशा में विचलित हों तो यह परिणाम निकलता है कि उद्गम-स्थान हमारी ओर आ रहा है। उद्गम-स्थान का वेग जितना ही अधिक होगा, काली रेखाएँ अपने स्थान से उतनी ही दूर अधिक हटेंगी। इसलिए विचलन को नापने से उद्गम स्थान का वेग दृष्टिरेखा में जाना जा सकता है।

नीहारिकाओं में चमकीले तारे भी हैं जिन का वर्णपट खींचा जा सकता है और उनमें काली रेखाओं के विचलन का अध्ययन किया जा सकता है। देखा गया है कि सब नीहारिकाएँ हम से दूर भाग रही हैं, और नीहारिका जितनी ही दूर है वह उतना ही अधिक वेग से हम से दूर भागती है। २० लाख प्रकाशवर्ष पर स्थित नीहारिकाएँ २०० मील प्रति सेकंड के वेग से दूर हो रही हैं; १ करोड़ प्रकाशवर्ष पर स्थित नीहारिकाएँ १००० मील प्रति सेकंड के वेग से दूर हो रही हैं। जब तक सौ, दो सौ, मील प्रति सेकड के वेग से अधिक वेग का पता नहीं लगा था तब तक तो कोई संदेह नहीं हुआ, परंतु जब बड़े-से बड़े दूरदर्शकों से अत्यंत दूरस्थ नीहारिकाओं के तारों के वर्णपटों का फोटोग्राफ लिया गया और २० हजार मील प्रति सेकड के वेग से भागती हुई नीहारिकाएँ मिली तब संदेह होने लगा कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही है। अभी तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि असली बात क्या है, परंतु अधिकांश ज्योतिषी समझते हैं कि वर्णपट की काली रेखाएँ उद्गम स्थान के वेग के अतिरिक्त संभवतः अन्य कारणों से भी विचलित हो सकती हैं। जिस प्रकाश को उद्गम-स्थान से चल कर हमारे पास आने में कई करोड़

वर्ष लगे हैं उसमें कुछ अज्ञात गड़बड़ी हो जाने में अचरज ही क्या है। फिर, इतनी मंद नीहारिकाओं के लिए अधिक शक्तिशाली दूरदर्शकों की आवश्यकता है। भविष्य ही बता सकेगा कि सच्चा कारण क्या है, परंतु यदि नीहारिकाएँ इस प्रकार भाग रही हैं कि जो जितनी ही दूर है वह उतनी ही अधिक वेगवती है तो अवश्य नीहारिकाओं की दुनिया फैल रही है; हमारा विश्व प्रसरणशील है। आइनस्टाइन के सापेक्षवाद से यह भी परिणाम निकलता है कि दूरस्थ नीहारिकाओं को हम से दूर भागना चाहिए। इसलिए यह मानने में कि विश्व प्रसरणशील है कुछ सहायता ही मिलती है। परंतु सापेक्षवाद से यह भी परिणाम निकाला जा सकता है कि विश्व बारी-बारी से सिकुड़ेगा और फैलेगा। असल बात यह है कि हम अभी कई बातें ठीक-ठीक नहीं जानते और कल्पना से कुछ बातें ठीक मान कर उन पर सापेक्षवाद का प्रयोग करते हैं। इसीलिए परिणाम भी विश्वसनीय नहीं निकलता।

हारवार्ड वेधशाला के हारलो शेपली (Harlow Shapley) का विश्वास है कि विश्व वस्तुतः फैल रहा है। विश्व का व्यास सवा अरब वर्ष में दुगुना हो जायगा। यह तो भविष्य की बात है। यदि भूतकाल में भी नीहारिकाओं का यही वेग रहा होगा तो आज से लगभग दो अरब वर्ष पहले सब नीहारिकाएँ पास-पास रही होंगी। यदि हमारा यह सिद्धांत ठीक है तो हम मान सकते हैं कि विश्व की उत्पत्ति उसी समय हुई होगी। उस समय तारे एक दूसरे से भिड़ भी जाया करते रहे होंगे। उन्हीं के टूटे-फूटे खंडों से संभवतः पृथ्वी तथा अन्य ग्रह बने होंगे। इस प्रकार हमें विश्व की उत्पत्ति के लिए एक सिद्धांत और विश्व की आयु जानने के लिये एक मार्ग मिल जाता है।

पृथ्वी पर के पत्थरों के अध्ययन से भूगर्भ वैज्ञानिक बताते हैं कि हमारे पुराने-से-पुराने पत्थर अरब वर्ष पुराने होंगे। इस प्रकार भूगर्भ विज्ञान से भी विश्व की आयु के लगभग दो अरब वर्ष होने के सिद्धांत का समर्थन होता है। फिर, तारापुंजों से भी हमारी मंदाकिनी-संस्था की आयु लगभग इतनी ही निकलती है।

परंतु सब कुछ होते हुए भी यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि विश्व की आयु वही है जो पृथ्वी के पत्थरों की है। इन सिद्धांतों की नींव ऐसी पक्की नहीं पड़ी है कि उनके सब परिणामों को हम निश्चित हो कर मान लें, और फिर यह प्रश्न तो बिना उत्तर के रह ही जाता है कि जब सब नीहारिकाएँ साथ थीं तो क्या हुआ कि वे दूर भागने लगीं। कोई भीषण विस्फोट हुआ होगा; परंतु ऐसा विस्फोट क्यों हुआ? इसके विपरीत, एडिंगटन तथा अनेक वैज्ञानिकों का विचार है कि आरंभ में सर्वत्र प्रायः एकरूप से द्रव्य फैला रहा होगा और विश्व की उत्पत्ति उसी से हुई होगी।

विश्व की उत्पत्ति—गुरुत्वाकर्षण का पता न्यूटन (Newton) ने लगाया। न्यूटन बहुत दिनों से इस प्रश्न पर विचार कर रहा था कि चंद्रमा, पृथ्वी, तथा अन्य ग्रह क्यों वृत्ताकार पथों में चलते हैं; सरल रेखा में वे क्यों नहीं चलते। कहा जाता है कि एक दिन सेब के पेड़ से सेब को टपकते देखकर उसे यह बात सूझी कि जैसे पृथ्वी सेब को अपनी ओर खींचती

हैं उसी प्रकार विश्व के सभी पिंड अन्य पिंडों को अपनी ओर खींचते हैं। पीछे, गणित द्वारा उसने सिद्ध किया कि यही खिंचाव, जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं, चंद्रमा को वृत्ताकार मार्ग में चलाकर पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने के लिए बाध्य करता है। यही शक्ति पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर घूमने के लिए बाध्य करती है। न्यूटन का विचार था कि आरंभ में द्रव्य अनंत दूरी तक सम रूप से बिखरा हुआ था और गुरुत्वाकर्षण के कारण स्थान-स्थान पर सिमट गया और इस प्रकार विविध पिंड (ग्रह और तारे) बन गये। न्यूटन ने यह विचार स्पष्ट रूप से सन् १६९२ में एक पत्र में प्रकट किया था। लगभग ६० वर्ष पीछे दार्शनिक कैंट (Kant) ने भी यही सिद्धांत प्रस्तुत किया। उसका विचार था कि जिस प्रकार निशाने पर गोली के आघात से गोली गरम हो जाती है उसी प्रकार केंद्रीय पिंडों पर नवीन द्रव्य के आ गिरने से द्रव्य इतना गरम हो जाता है कि उसमें चमक उत्पन्न हो जाती है। तारे इसी प्रकार उत्पन्न हुए होंगे। कैंट की यह भी धारणा थी कि कणों के आघात से पिंड घूमने लगे। परंतु आधुनिक विज्ञान के मत से यह बात असंभव है। आघात से ताप अवश्य उत्पन्न होता है, घूमना नहीं। यदि आरंभ में पिंड घूमता रहा हो तो संकुचित होने पर वह अधिक वेग से घूमने लगेगा, परंतु यदि आरंभ में वह न घूमता रहा हो तो केवल संकुचित होने से उसमें घूमने की योग्यता नहीं आ जायगी। कैंट के सिद्धांत से मिलता-जुलता, परंतु गणित के दृष्टिकोण से उससे कहीं अच्छा, एक नवीन सिद्धांत महान् गणितज्ञ लाप्लास (Laplace) ने उपस्थित किया। इसे नीहारिका-सिद्धांत (नेब्युलर हाइपॉथेसिस) कहते हैं। यह लगभग १०० वर्षों तक निर्दोष माना गया।

लाप्लास का नीहारिका सिद्धांत—लाप्लास ने कैंट के सिद्धांत से लाभ उठाया हो, ऐसा नहीं जान पड़ता। संभवतः उसने स्वतंत्र रूप से अपना सिद्धांत बनाया। यह सिद्धांत १७९६ में प्रकाशित हुआ। लाप्लास का मत था कि आरंभ में कोई बड़ी-सी नीहारिका थी, जो अपनी धुरी पर नाच रही थी। उसका विचार था कि यह नीहारिका अत्यंत तप्त थी और विकिरण के कारण जैसे-जैसे यह ठंडी हुई तैसे-तैसे यह छोटी होती गयी। छोटी होने के कारण यह अधिक वेग से नाचने लगी, क्योंकि गति-सिद्धांत बताता है कि कोणीय आवेग (ऐंगुलर मोमेंटम) का नाश नहीं हो सकता। लाप्लास ने सोचा कि इस प्रकार नीहारिका क्रमानुसार अधिकाधिक वेग से नाचने लगी। गणित बताता है कि तरल या गैसीय गोल पिंड नाचते रहने पर गोल नहीं रह सकता। वह चिपटा हो जायगा। उसकी आकृति नारंगी के समान हो जायगी जिसे गणित में गोलाभ (स्फेरॉयड) कहते हैं। पृथ्वी की आकृति भी गोलाभ है और कारण यही जान पड़ता है कि जब पृथ्वी अधिक तप्त और संभवतः तरल या नरम थी उस समय नाचते रहने के कारण पृथ्वी का ऐसा रूप हो गया होगा। सभी अन्य ग्रहों का रूप भी गोलाभ है। यदि पृथ्वी आज अपने अक्ष पर नाचना बन्द कर दे तो समुद्र का जल पूर्णतया गोल रूप धारण कर लेगा। इस समय उसका रूप गोलाभ है। भूमध्य रेखा पर पृथ्वी के केंद्र से पानी की सतह अधिक दूर है और ध्रुवों के पास कम दूर। ऐसा इसी कारण है कि भूमध्य रेखा के पास जल अधिक बल से छिटक जाना चाहता है क्योंकि वह अक्ष से अधिक दूरी पर है। यदि पृथ्वी पर्याप्त अधिक वेग से नाचने लगे तो यह पानी अवश्य छटक कर दूर चला जायगा। नाचते हुए पिंड में अक्ष से द्रव्य के दूर भाग के

भागने की प्रवृत्ति को समझने के लिए देखें कि कारखानों में चीनी के रवों से जल दूर करने के लिए छिद्रमय बरतन में गीली चीनी को रख कर उसे जोर से नचाया जाता है, और मक्खन तथा दूध को अलग करने के लिए भी ऐसी ही मशीनों का प्रयोग किया जाता है जिसमें दूध वेग से नाचने लगता है।

लाप्लास की धारणा थी कि जब नीहारिका वेग से नाचने लगी तो इसमें से पदार्थ छटका और वही केंद्रीभूत होकर ग्रहों में परिवर्तित हो गया। यही कारण है कि सभी ग्रह सूर्यमध्य रेखा के धरातल में हैं। लाप्लास का विचार था कि जैसे सूर्य से ग्रह बने उसी प्रकार ग्रहों से उपग्रह बने। बहुत दिनों तक यह सिद्धांत ठीक माना जाता था, परंतु अब वेध तथा गणना से कई बातों का पता चला है जो इस सिद्धांत के प्रतिकूल पड़ती हैं। लाप्लास का सिद्धांत गणित क दृष्टिकोण से ठीक है, परंतु सूर्य और ग्रहों पर ठीक नहीं बैठता। इसलिए स्वीकार करना पड़ता है कि कम-से-कम सौर-जगत् की (अर्थात् सूर्य तथा ग्रहों की) उत्पत्ति लाप्लास सिद्धांत के अनुसार नहीं हुई है। परंतु इस सिद्धांत के अनुसार ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, अर्थात् हमारी मदाकिनी-संस्था तथा अगांग नीहारिकाओं की उत्पत्ति, अधिक संभव है।

ऊपर इस पर विचार किया गया है कि नाचते रहने पर तरल या गैसीय पिंड गोलाभ रूप धारण कर लेता है। आधुनिक गणित बताता है कि यदि अधिकतर द्रव्य केंद्र के पास हो तो नाचने का वेग बढ़ने पर पिंड की आकृति गोलाभ न रह जायगी। इसका मध्य भाग अधिक दूर तक विस्तृत हो जायगा और पिंड बहुत चिपटा हो जायगा। वस्तुतः पिंड की आकृति फूली हुई रोटी के समान हो जायगी। मध्यरेखा नुकीली रहेगी; गोलाभ के मध्य भाग के समान वह अतीक्ष्ण नहीं रहेगी। गणित बताता है कि घूमने के वेग में अधिक वृद्धि होने पर मध्यरेखा से द्रव्य छिटकने लगेगा। पिंड अब इतने वेग से नाच रहा है कि छटक जाने की प्रवृत्ति वहाँ की आकर्षण शक्ति से अधिक है। इसलिए द्रव्य छटकता जाता है। अब पिंड के नाचने का वेग चाहे कितना भी बढ़े, पिंड की आकृति नहीं बदलती; केवल अधिकाधिक द्रव्य घटता जाता है। इन्हीं
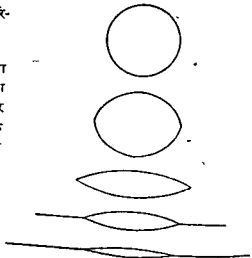
अपने अक्ष पर नाचते हुए पिंड का रूप।

वेग शून्य रहने पर पिंड गोलाकार रहता है। जैसे-जैसे वेग बढ़ता है पिंड चिपटा होता जाता है अंत में खस से द्रव्य छटकने लगता है।

परिणामों के आधार पर सर जेम्स जीन्स (Jeans) ने अपना सिद्धांत बनाया, जिसका विवरण नीचे दिया जाता है।

जीन्स का सिद्धांत—जीन्स ने न्यूटन की तरह यह माना कि आरंभ में द्रव्य बहुत दूर तक, प्रायः अनंत दूर तक, सम रूप से, फैला हुआ था। जीन्स ने गणित द्वारा यह खोज की कि इस प्रकार बिखरे द्रव्य से यदि पिंड बनेंगे तो कितने बड़े-बड़े और कितनी दूर-दूर पर। जीन्स ने पहले इसकी गणना की कि यदि ऐसे माध्यम में लहरें उठें तो उनकी लहर-लंबाई क्या होगी; लहरें कितनी बड़ी रहेंगी तो द्रव्य कहीं सिमट जायगा, कहीं फट जायगा; द्रव्य का घनत्व क्या रहा होगा; तापक्रम क्या रहा होगा; इत्यादि। हबल (Hubble) की गणनाओं से यह ज्ञात है कि यदि अंतरिक्ष के सब तारों और नीहारिकाओं का द्रव्य पीस कर इस प्रकार बिखेर दिया जाय कि सब जगह घनत्व बराबर हो जाय तो प्रति घन इंच १ ग्राम (लगभग १ माशा) का 10^{32}वाँ भाग द्रव्य होगा। 10^{32} का अर्थ है कि १ की दाहिनी ओर ३२ शून्य लिखे जायें। दूसरे शब्दों में १००० घन गज में लगभग एक अणु द्रव्य होगा! ऐसे द्रव्य पर गणित लगाने से यह परिणाम निकलता है कि जब द्रव्य घनीभूत होगा तो तारों से कहीं भारी (करोड़, दस करोड़ गुना भारी) पिंड बनेंगे। इसलिए अनुमान किया जाता है कि आरंभ में तारे न बने होंगे, नीहारिकाएँ बनी होंगी।

नीहारिकाओं के विकास पर पहले विचार किया जा चुका है; इसलिए वे बातें यहाँ दुहराई न जायँगी। नीहारिकाओं के फोटोग्राफों में गोल और प्रायः गोल से लेकर चिपटी गोलाभ तथा धारदार मध्यरेखा वाली नीहारिकाएँ सभी मिलती हैं। केंद्रीय गोल या गोलाभ भाग को घेरे हुए जो पदार्थ रहता है उसकी मोटाई बहुत कम प्रतीत होती है। इन सब बातों से विश्वास दृढ़ हो जाता है कि जीन्स की कल्पना के अनुसार ही नीहारिकाओं का जन्म हुआ है। जीन्स का कहना है कि जैसे हमारे वायुमंडल में पवन बहा करता है, उसी प्रकार हमारे सर्वत्र बिखरे प्रारंभिक द्रव्य में भी कहीं धीरे, कहीं प्रचंड वेग से पवन बहता रहा होगा; उनमें आँधी आती रही होगी, बवंडर उठते रहे होंगे। इसी से पृथक्-पृथक् नीहारिकाओं में चक्कर किसी में कम किसी में अधिक उत्पन्न हो गया होगा।

तारों की उत्पत्ति—जीन्स ने अनुमान किया है कि वेग बढ़ने पर नीहारिकाओं से जो द्रव्य छटका होगा उसका घनत्व प्राथमिक द्रव्य के घनत्व से १० अरब गुना अधिक रहा होगा, और इसलिए लहरों के तरंग-दैर्घ्य पहले की अपेक्षा छोटे रहे होंगे। गणना से पता चलता है कि ऐसे पदार्थ से जो पिंड बने होंगे उनका द्रव्यमान तारों के द्रव्यमान के बराबर रहा होगा। इसलिए अब ज्योतिषियों की धारणा है कि तारे सर्पिल नीहारिकाओं की भुजाओं में उत्पन्न होते हैं। वास्तविक नीहारिकाओं की भुजाओं में तारों का पाया जाना इस बात का समर्थन करता है।

तारायुग्मों की उत्पत्ति—तारों के जन्म तक तो लाप्लास और जीन्स के सिद्धान्तों में विशेष अन्तर नहीं है। जीन्स ने गणित से अधिक सहायता ली है; लाप्लास ने कई बातों को केवल कल्पना

पर ही आश्रित छोड़ दिया था। परंतु सूर्य से ग्रहों की उत्पत्ति कैसे हुई इस पर जीन्स का मत सर्वथा विभिन्न है।

जीन्स का कहना है कि जन्म के बाद तारा संकुचित होता चला जाता है और जब तक उस का केंद्र तरलों के समान घना नहीं हो जाता, तब तक छोटे हो जाने के अतिरिक्त उसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। यदि कुछ पदार्थ छटकता भी है तो वह घनीभूत नहीं हो पाता, ठीक वैसे ही जैसे रबड़ के गुब्बारे से निकलने पर गैस घनीभूत नहीं होती। घनीभूत होने के लिये बहुत द्रव्य चाहिए। तभी आकर्षण-शक्ति इतनी हो पाती है कि उस गैस की प्रसरणशीलता को दबा सके। जब तारे का घनत्व तरलों के समान हो जाता है तब उसमें वे सब विकार उत्पन्न होते हैं जो तरलों में हो सकते हैं। जीन्स के गणित के अनुसार यदि तरल का गोल पिंड धीरे-धीरे नाचने लगे तो पिंड की आकृति गोलाभ हो जायगी, अर्थात् पिंड नारंगी की तरह कुछ चिपटा हो जायगा। नाचने का वेग जितना ही बढ़ेगा चिपटापन उतना ही बढ़ेगा; परंतु जब छोटा अक्ष मध्यरेखा के व्यास का सप्त-द्वादशांश हो जायगा (अर्थात् उसका ७/१२ हो जायगा) तो पिंड उसके बाद अधिक चिपटा नहीं होगा। इसके बदले पिंड अंडाकार होने लगेगा। इसकी आकृति वह हो जायगी जिसे गणित में तीन असम अक्षों वाला दीर्घवृत्ताभ (एलिप्सॉयड) कहते हैं। वेग और बढ़ने पर पिंड की लबाई बढ़ती जायगी, यहाँ तक कि लंबा अक्ष सब से छोटे अक्ष का तिगुना हो जायगा। इस अवस्था में पिंड में हलचल मचने लगती है। बीच से थोड़ा हट कर पिंड में कमर-सी बन जाती है, जिससे पिंड तुंबा-सा लगने लगता है। कभी एक सिरा बढ़ता है, कभी दूसरा, और इन सब आन्दोलनों का परिणाम यह होता है कि पिंड दो खंडों में टूट जाता है। विश्वास किया जाता है कि युग्मतारे इसी प्रकार उत्पन्न हुए हैं। जीन्स ने गणित से सिद्ध किया है कि गैसीय पिंड इस रीति से दो खंडों में नहीं विभक्त हो सकता, केवल तरल पिंड में ही ऐसा विभाग हो सकता है।

जी० एच० डार्विन (Darwin) ने सिद्ध किया है कि विभक्त होने के बाद प्रत्येक पिंड में दूसरे के कारण ज्वार-भाटाएँ उत्पन्न होंगी, जिनके कारण ऊर्जा (एनर्जी) का ह्रास होगा और पिंडों के बीच की दूरी बढ़ेगी। विकिरण के कारण सापेक्षवाद के अनुसार पिंडों का द्रव्यमान भी घटता है और जीन्स ने सिद्ध किया है कि इस कारण से भी पिंड अधिक दूर होते जायँगे। फिर, जब-जब कोई दूसरा तारा किसी युग्मतारे के पास से होकर निकल जाता है, तब-तब युग्मतारे के सदस्यों की परस्पर दूरी कुछ बढ़ जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे उनके बीच में उतनी दूरी उत्पन्न हो जाती है जितनी बहुधा देखने में आती है।

ग्रहों की उत्पत्ति—नीहारिकाओं और तारों की उत्पत्ति पर तो हम विचार कर चुके; अब देखना चाहिए कि ग्रह कैसे उत्पन्न हुए होंगे। ग्रहों की उत्पत्ति न तो प्राथमिक नीहारिका से हुई होगी, न सूर्य के दो भागों में खंडित होने से। नीहारिका से ग्रहों की उत्पत्ति हुई होती तो ग्रह बहुत बड़े होते; वस्तुतः वे तारे होते। यदि वे सूर्य के खंडित होने से उत्पन्न हुए होते तो

वे सूर्य से बहुत छोटे न होते । युग्मतारों में बड़ा तारा छोटे के चौगुना तक ही देखने में आया है, परंतु सूर्य तो बृहस्पति से १००० गुना अधिक भारी है, बुध से ८० लाख गुना भारी है । इस लिए ग्रहों की उत्पत्ति किसी दूसरी रीति से हुई होगी । इसके समर्थन में यह भी याद रखने योग्य है कि हमारा सूर्य अपनी धुरी पर बहुत कम वेग से नाचता है । ग्रहों में भी आवेग (मोमेंटम) कम है । इसलिए कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता कि ग्रह पूर्वोक्त रीति से सूर्य के खंडित होने पर बने हैं । जीन्स का विश्वास है कि किसी समय कोई अन्य तारा हमारे सूर्य के पास से होता हुआ निकल गया । उसी के आकर्षण से कुछ द्रव्य, जैसा नीचे विस्तार से समझाया जायगा, सूर्य से खुच गया । इसी द्रव्य से ग्रह बने ।

ज्वार-भाटा सिद्धांत—सूर्य कई अरब वर्षों से अंतरिक्ष में चल रहा है । अन्य तारे भी चलते ही रहते हैं । इसलिए असंभव नहीं जान पड़ता कि अत्यंत प्राचीन काल में कभी कोई दूसरा तारा सूर्य के पास होता हुआ निकल गया हो । जिस प्रकार पृथ्वी के निकट होने के कारण चंद्रमा पृथ्वी पर ज्वार-भाटा उत्पन्न करता है, उसी प्रकार इस बाहरी तारे ने सूर्य पर ज्वार-भाटा उत्पन्न किया होगा । उस समय हमारे सूर्य के पास पृथ्वी आदि ग्रह न रहे होंगे । यदि तारा सूर्य की त्रिज्या (अर्धव्यास) की तिगुनी से अधिक दूरी पर से हो कर निकलता, तो ज्वार-भाटा से उठा पदार्थ फिर बैठ जाता; परंतु वह सूर्य के अधिक निकट से होकर गया होगा । गणित बताता है कि ऐसी अवस्था में ज्वार-भाटा के कारण उठा पदार्थ छटक कर पृथक् हो गया होगा । जीन्स का कहना है कि इसी प्रकार छटके पदार्थ से ग्रह उत्पन्न हुए हैं । इसका समर्थन इस बात से होता है कि गणित के अनुसार छटका पदार्थ जब सिमटेगा तब लगभग उतने ही बड़े पिंड बनेंगे जितने बड़े ग्रह वस्तुत: हैं । उपग्रहों की उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई होगी, क्योंकि ग्रहों के बनने ही उन में सूर्य के कारण ज्वार-भाटा उठा होगा और कुछ पदार्थ छटका होगा । परंतु उपग्रहों के भी उपग्रह इसलिए न बन पाये होंगे कि उपग्रहों में द्रव्य कम है; वे शीघ्र ठंडे हो गये होंगे ।

केवल इतना ही नहीं हुआ कि ग्रह और उपग्रह बने । अवश्य ही कुछ द्रव्य चूर्ण के रूप में बिखरा रह गया । वह सब द्रव्य धीरे-धीरे किसी न किसी ग्रह में जा गिरा । इसका परिणाम गणितानुसार यह होता है कि दीर्घवृत्त में चलने वाले ग्रह प्रायः वृत्ताकार मार्गों में चलने लगते हैं । वर्तमान ग्रह सभी लगभग वृत्तों में ही चलते हैं । पदार्थ आ गिरने के कारण ग्रहों के मार्ग कुछ अधिक बड़े भी हो गये होंगे । समय पा कर प्रायः सभी पदार्थ ग्रह में या सूर्य में जा गिरा होगा और अंतरिक्ष स्वच्छ हो गया होगा । सूर्य के पास अब भी कुछ धूलि-सी है, जो सूर्य के प्रकाश से दीप्तिमान होने के कारण राशिचक्र-प्रकाश (ज़ोडाइऐकल लाइट) के रूप में हमें दिखाई पड़ती है । संभव है यह उसी पदार्थ का अवशेष हो जिससे ग्रह बने हैं ।

इस पर भी विचार किया गया है कि हमारे सौर जगत् की आयु क्या होगी । जेफ़रीज़ (Jeffreys) ने हिसाब लगाया है कि मोटे हिसाब से ग्रहों को वर्तमान परिस्थिति में आने में ७ अरब वर्ष लगा होगा । हम पहले देख चुके हैं कि पृथ्वी की आयु भूगर्भ-विज्ञान के आधार पर लगभग २ अरब वर्ष है । इसलिए दोनों एक दूसरे का समर्थन करते हैं । परंतु अन्य कई बातें

हैं जिन्हें यह ज्वारभाटा-सिद्धांत ठीक-ठीक नहीं समझा पाता। इसलिये कोई निश्चित होकर नहीं कह सकता कि ज्वारभाटा-सिद्धांत ठीक ही है; तो भी वर्तमान अवस्था में यही सिद्धांत सबसे अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

जीन्स का विश्वास है कि जैसे अन्य उपग्रहों का जन्म उनके ग्रहों के जन्म के प्रायः साथ ही हुआ उसी प्रकार चन्द्रमा का भी जन्म पृथ्वी के जन्म के प्रायः साथ ही हुआ होगा। परंतु जीन्स के पहले जी० एच० डारविन ने यह सिद्धांत उपस्थित किया था कि आरंभ में, जब पृथ्वी तरल थी, सूर्य के कारण पृथ्वी पर ज्वार-भाटा उत्पन्न होता रहा होगा। ऐसे ज्वार-भाटा का चक्रकाल सूर्य से पृथ्वी की दूरी पर निर्भर है। ऊपर हम देख चुके हैं कि आरंभ में पृथ्वी तथा सब अन्य ग्रहों की दूरी सूर्य से बढती जा रही थी। इसलिए संभव है कि किसी जमाने में पृथ्वी के ज्वार-भाटा का चक्रकाल ठीक उस काल के बराबर हो गया हो जितने में उस समय पृथ्वी सूर्य के चारों ओर एक बार प्रदक्षिणा करती थी। उस समय अनुनाद (रेज़ोनेंस) के सिद्धातानुसार ज्वार-भाटा की ऊँचाई इतनी बढ गई होगी कि काफी पदार्थ छटक कर अलग हो गया होगा। यही पदार्थ पीछे सिमट कर चद्रमा हो गया होगा। जेफरीज़ ने इस प्रश्न की जाँच सविस्तार की है और यह परिणाम निकाला है कि ऐसा होना बहुत संभव है। अधिक वेग से नाचने के कारण यदि आदि काल में ही पृथ्वी खडित होती तो चंद्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के द्रव्यमान से बहुत कम न होता। परतु चंद्रमा का द्रव्यमान पृथ्वी के अस्सीवें भाग (१/८०) से कुछ कम है। इसलिए पृथ्वी के अधिक वेग से नाचने के कारण चद्रमा न उत्पन्न हुआ होगा। यद्यपि डारविन और जेफरीज़ का सिद्धात गणित के अनुसार ठीक है तो भी अधिक सभव है कि ग्रहों की उत्पत्ति के समय ही बाहरी तारे, सूर्य और छटके पदार्थ की नोच-खसोट में पृथ्वी से चंद्रमा के बराबर माल अलग हो गया हो और उसी समय चद्रमा का जन्म हुआ हो।

अन्य सौर-जगतों की संभावना—इसकी भी गणना की गई है कि हमारे सूर्य और किसी तारे, या किन्हीं भी दो तारो, के इतने पास आ जाने की क्या संभावना है कि ग्रहादि उत्पन्न हो सकें। कितने स्थान में कितने तारे हैं और वे किस वेग से चलते हैं यह ज्ञात ही है। इसलिये दो तारो की मुठभेड़ की सभावना गणना द्वारा ज्ञात की जा सकती है। यद्यपि सूर्य तथा तारो के उत्पन्न हुए कई अरब वर्ष हो गये हैं तो भी तारे एक-दूसरे से इतनी दूर-दूर पर हैं कि मुठभेड़ की सभावना बहुत कम है और इसलिए बहुत कम तारों के पास ग्रह होगें। पहले लोगों की धारणा थी कि प्रत्येक तारे के आस-पास ग्रह होगे, परंतु पूर्वोक्त गणना के अनुसार जान पड़ता है कि प्रति दस लाख तारो में केवल एक के पास ग्रह और उपग्रह होगे।

भविष्य—यदि सौर-जगत् की उत्पत्ति हमारे सूर्य और किसी तारे के मुठभेड़ से हुई तो क्या यह सभव नही है कि भविष्य में सौर-जगत् का अत भी किसी ऐसी ही मुठभेड से हो? ऐसा होना यद्यपि असभव नहीं है, तो भी इस की सभावना बहुत कम है। वस्तुतः कुल सभावना इतनी ही है कि औसतन २×१०^{१७}, अर्थात २,००,००,००,००,००,००,००,००० वर्षों में एक

मुठभेड़ होगी। इसके लिए क्या हाय-हाय किया जाय? इससे कहीं अधिक संभव है कि हमारा सूर्य धीरे-धीरे अधिक तप्त हो जायगा और इसलिए पृथ्वी पर जीवन का अंत हो जायगा।

तारा-पुंजों के भविष्य में क्या है? क्या वे सदा पुंज के रूप में ही बने रहेंगे? इस प्रश्न का उत्तर भी गणित से मिला है। तारों में वेग है। इसलिए प्रत्येक दो तारों की दूरी सदा एक-सी नहीं बनी रहती है। तारों के बीच गुरुत्वाकर्षण रहता है। दूरी के अनुसार गुरुत्वाकर्षण कम या अधिक रहता है, परंतु प्रभाव सदा यही पड़ता है कि शीघ्रगामी तारे का वेग कुछ घट जाता है, मंद गति से चलने वाले तारे का वेग कुछ अधिक हो जाता है। तारापुंजों के तारों पर बाहरी तारों का भी ऐसा प्रभाव पड़ेगा कि धीरे-धीरे पुंज बिखर जायगा। रोहिणी तारापुंज हमारे पास है। इस पुंज का सब से घना भाग हम से कुल १३० प्रकाश वर्ष पर है। इस पुंज के प्रत्येक सदस्य को हम जानते हैं। प्रायः सभी सदस्य एक दूसरे के समानान्तर और लगभग एक ही वेग से जा रहे हैं। आगामी अरब वर्षों में इस पुंज की गति क्या होगी हम गणित द्वारा बता सकते हैं। धीरे-धीरे इस के सदस्य बिखर जायेंगे और अरब वर्षों में वे उतनी-ही-उतनी दूरी पर छिटक जायेंगे जितनी-जितनी पर सूर्य के आस-पास तारे छिटके हुए हैं। तारापुंज का शीघ्र बिखरना सुगम नहीं है। जो सदस्य बाहरी तारे के आकर्षण से कुछ अधिक विचलित हो जाता है उसे पुंज के अन्य सदस्य अपनी ओर खींच लाने की चेष्टा करते हैं। बात कुछ वैसी ही है जैसे ज्वार-भाटा के उठने में है। बाहरी पिंड के आकर्षण से ज्वार-भाटा उत्पन्न होता है, परंतु बाहरी पिंड के हट जाने पर ज्वार-भाटा बैठ जाता है, इसी प्रकार किसी बाहरी तारे के समीप आ जाने पर पुंज के तारे उससे कुछ विचलित हो जाते हैं, परंतु बाहरी तारे के दूर चले जाने पर वे फिर प्रायः पुरानी जगह आ जाते हैं; तो भी कुछ प्रभाव स्थायी रूप से सदा के लिए पड़ ही जाता है। पुंज थोड़ा बिखर जाता है। कुछ तारापुंजों में इतना कम द्रव्य है कि वे शीघ्र तितर-बितर हो जायेंगे; परंतु रोहिणी-तारापुंज स्थाई समतुलन में (स्टेबुल) है। यह शीघ्र न बिखरेगा। अनुमान किया गया है कि इसके इतना बिखरने में कि यह पहचान न पड़े ५ खरब वर्ष लगेंगे। कृत्तिका तारापुंज रोहिणी-तारापुंज से अधिक घना है। इसके विलीन होने में अधिक समय लगेगा; संभवतः २० अरब वर्ष लगेंगे। गोलाकार तारापुंज संभवतः कभी न विलीन होंगे।

यह भी प्रश्न उठता है कि क्या नये तारापुंज बन सकते हैं। गणित का उत्तर यही है कि यह प्रायः असंभव है। बाहरी तारे आते जायें और एक दूसरे के आकर्षण में उलझ कर तारापुंजों का निर्माण करें यह अनहोनी-सी बात जान पड़ती है। इसलिए समय पाकर तारापुंजों का विनाश ही होगा। उनके स्थान पर नवीन तारापुंज न आ सकेंगे।

अब यह प्रश्न उठता है कि जब विश्व की सृष्टि हुई तो क्या आज से बहुत अधिक तारापुंज थे। इसका उत्तर इस पर निर्भर है कि विश्व की सृष्टि कब हुई। हम इस प्रश्न को उलट कर पूछें तो अधिक लाभदायक उत्तर मिलता है। प्रश्न यह होगा कि वर्तमान तारापुंजों को देखते हुए क्या यह नहीं बताया जा सकता कि विश्व अधिक-से-अधिक कितना पुराना होगा? यदि

विश्व बहुत ही पुराना होता तो सभी तारापुंज अब तक विलीन हो गये होते। अब भी तारापुंज हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि हमारा विश्व अनंतकाल से ही नहीं चला आया है। वस्तुत गणना से पता चलता है कि हमारा विश्व १० अरब वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं है। इसकी तुलना भूगर्भ-विज्ञान से प्राप्त आयु से करने पर हम देखते हैं कि प्राय: सभी दृष्टि-कोणों से विश्व की आयु कुछ अरब वर्ष जान पड़ती है।

सारांश

इस पुस्तक को समाप्त करने के पहले हम नीहारिका-संबंधी ज्ञान का सारांश दे देना चाहते हैं।

सूर्य के चारो ओर ग्रह प्रदक्षिणा करते हैं। इन ग्रहों में से एक ग्रह पृथ्वी है। पृथ्वी सूर्य से सवा नौ करोड़ मील दूर है। गणित भी क्या आश्चर्यजनक विद्या है कि बड़ी-से-बड़ी सख्याओं को थोड़े में प्रकट कर लेती है। लखपती या करोड़पती शब्द से परिचित होने के कारण, या भारत सरकार के बजट में कई अरब रुपयों की चर्चा सुनत-सुनते, अथवा पिछले अध्यायो में कई अरब वर्षों या कई खरब मीलों के उल्लेख से, संभव है पाठक सवा नौ करोड़ मील को कुछ विशेष अधिक न समझें। परतु है यह सख्या बहुत बड़ी। यदि हम रेलगाड़ी से सूर्य तक जाना चाहें और यह गाड़ी बिना रुके हुए बराबर डाक गाड़ी की तरह ६० मील प्रति घंटे के हिसाब से चलती जाय तो हमें वहाँ तक पहुँचने में (यदि हम मार्ग में भस्म न हो जायँ, या बुढापे के कारण हमारी मृत्यु न हो जाय) १७५ वर्ष से कम न लगेगा। रेलभाड़े के वर्तमान दर से तीसरे दरजे से आने-जाने का खर्च अंट्ठावन लाख रूपया हो जायगा। इस यात्रा के लिए यदि स्टेशन-मास्टर नोट लेना न स्वीकार करे और सोना १०० रुपया प्रति तोला हो तो हमको लगभग १८ मन सोना किराया में देना पडेगा!*

परतु सूर्य की यह आश्चर्यजनक दूरी तारो की दूरी के सामने तुच्छ है। यदि हम सूर्य की दूरी को नक्शे में एक इंच से निरूपित करें तो निकटतम तारा उस नक्शे में पाँच मील पर पड़ेगा। इससे स्पष्ट है कि तारे बहुत दूर-दूर पर स्थित हैं। हमारा सूर्य भी एक तारा है और ग्रह सब इसी के परिवार में हैं। सूर्य का निकटतम पड़ोसी तारा इतनी दूर पर है कि वहाँ से अच्छे दूरदर्शक से भी हमारी पृथ्वी दिखाई न पडेगी। पाँच मील की दूरी से एक इंच की दूरी जितनी नगण्य है, वैसे ही निकटतम तारे से पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी नगण्य है। इस पैमाने पर पृथ्वी तो इंच के दस हजारवें भाग से भी छोटी पड़ेगी। पृथ्वी को निकटतम तारे से परदा करने की कोई आवश्यकता ही नहीं; बिना परदे के ही वह अदृश्य रहेगी!

सूर्य और जितने भी तारे हमें दिखाई पड़ते हैं सब एक विशेष समूह में हैं, जिसे हम मंदाकिनी-सस्था कहते हैं। जब निकटतम तारा हम से इतनी दूरी पर है, जितनी ऊपर बतायी गयी

*देखक कृत 'सौर-परिवार' है।

है और हम जानते हैं कि हमरी मंदाकिनी-संस्था में नहीं कुछ तो एक खरब तारे होंगे, जो एक दूसरे से इसी प्रकार दूर-दूर पर बसे हुए है, तब मंदाकिनी-संस्था कितनी बड़ी होगी ? अवश्य ही यह हमारी कल्पना-शक्ति के परे है। एक खरब तारों की कल्पना ही विकट है। "प्रथम बार तो ऐसा जान पड़ता है कि कोरी आँख से दिखाई पड़ने वाले तारे ही असंख्य होंगे। परंतु गिन कर देखा गया है कि कोरी आंख से एक समय में ३,००० से अधिक तारे कभी दिखाई नहीं पड़ते। संपूर्ण आकाश में कुल ६,००० तो तारे है ही, और हमें एक बार में आधे से अधिक आकाश दिखाई नहीं पड़ता। गिनने को कौन कहे, इन ६,००० तारों के नाम या नंबर पड़े हैं और उन की सूची छपी है। अब अपनी मंदाकिनी-संस्था के तारो की कल्पना करने के लिए यदि हम सोचें कि आकाश में दिखाई पड़ने वाले ३,००० तारों में से प्रत्येक फूट कर अपने ही बराबर ३,००० तारों में प्रस्फुटित हो जाता है तो भी हमें कुल ९० लाख तारे मिलेंगे ! मंदाकिनी-संस्था के १ खरब तारों की संख्या के आगे यह कुछ नहीं है।"*

यदि हम अपनी मंदाकिनी-संस्था को प्रतिमा "पैमानें के अनुसार बनाना चाहें और हमारी समूची प्रतिमा कुम्हार के चाक के बराबर हो तो इस प्रतिमा में हमारी पृथ्वी सूक्ष्मतम कण से भी छोटी होगी !! वस्तुतः वह इतनी छोटी होगी कि किसी भी सूक्ष्मदर्शक यंत्र से हम को वह न दिखाई पड़ेगी !!!" सूर्य भी कठिनाई से मिल पायेगा।

हमारी मंदाकिनी-संस्था का रूप बहुत कुछ कुम्हार के उस चाक की तरह है, जिसके बीच में ऊपर और नीचे मिट्टी के अर्धगोल चिपका दिये गये हों।

हमारी मंदाकिनी-संस्था में केवल तारे ही नहीं है। उस में बादल की तरह सफेद नीहारिकाएँ, काली नीहारिकाएँ, तारापुंज और गोलाकार तारापुंज भी है। सर्वत्र थोड़ी धूलि भी फैली है। जहां यह धूलि अधिक हो गई है, वहाँ वह काली नीहारिका-सी जान पड़ती है। जहाँ किसी अति तप्त तारे के पराकासनी प्रकाश से धूलि चमक उठती है वहीं वह श्वेत बादल के समान प्रसृत नीहारिका-सी जान पड़ती है। साधारण तारापुंज वे तारापुंज है जहाँ दो-चार सौ या कम तारे, संयोग से या उत्पत्ति के समय के किसी विशेष कारण से, एकत्र हो गये है। गोलाकार तारा-पुंजों में कई हजार तारे एक साथ रहते है और वे देखने में अत्यंत सुन्दर लगते है। उनका क्या भौतिक अर्थ है, कोई कह नहीं सकता, परंतु वे हमारी मंदाकिनी-संस्था से संबंधित है। वे उसी को घेरे हुए है और अपेक्षाकृत उसी के पास है।

जिस प्रकार हमारी मंदाकिनी-संस्था है, उसी प्रकार प्रायः असंख्य अन्य संस्थाएँ हैं। इन्हें अगाग नीहारिका, द्वीपविश्व या ब्रह्मांड कहते हैं। उनकी संरचना बहुत-कुछ वैसी ही है जैसी हमारी मंदाकिनी-संस्था की। अधिकांश ऐसी नीहारिकाएँ नाप में प्रायः उतनी ही बड़ी है जितनी हमारी मंदाकिनी संस्था। प्रत्येक में कई अरब या खरब तारे होगे। अधिकांश

---

* 'सरल विज्ञान-सागर' में लेखक के एक लेख से।

का रूप कुम्हार के चाक की तरह परंतु बीच में फूला हुआ होगा। बीच वाले गोलाभ भाग को चारों ओर से घेरने वाले भाग में पदार्थ चाक की तरह अटूट नहीं, कुछ-कुछ साँप की कुंडली की तरह सर्पिलाकार है। एक चौथाई नीहारिकाएँ नारंगी की तरह चिपटी हैं और विश्वास किया जाता है कि सुदूर भविष्य में उनमें भी सर्पिलाकार भुजाएँ निकल आयेंगी।

अपेक्षाकृत निकट अगाग नीहारिकाओं का रूप उनके फोटोग्राफों से स्पष्ट हो जाता है। इस पुस्तक में दिये गये चित्रों से उनका रूप पाठको को भी स्पष्ट हो गया होगा, परंतु स्मरण रखना चाहिये कि नीहारिकाओ के धरातलो से हम कभी कम, कभी अधिक, बाहर हो सकते हैं और कभी-कभी ठीक उसी धरातल में हो रह सकते हैं। इसलिए ठीक एक ही रूप की दो नीहारिकाएँ हमें कम या अधिक चिपटी दिखाई दे सकती हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे रकाबी का सच्चा चित्र बनाने में चित्रकार अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसे कम या अधिक दीर्घवृत्ताकार बना सकता है।

ये अगांग नीहारिकाएँ एक-दूसरे से दूर-दूर पर बसी हैं। हम देख चुके हैं कि यदि हम एक को दिल्ली शहर से निरूपित करें तो दूसरी कहीं मेरठ के पास जा कर पड़ेगी। इस प्रकार नीहारिकाएँ, यद्यपि वे स्वयं ही बहुत बड़ी हैं, अपेक्षाकृत बहुत दूरियों पर स्थित हैं।

जहाँ तक वर्तमान दूरदर्शकों से पता चला है नीहारिकाओ का कोई अंत नही है। अंतरिक्ष में वे प्रायः सम रूप से बसी हैं, अर्थात् उनका घनत्व सब जगह प्रायः बराबर है। कुछ नीहारिका-पुंज अवश्य है, परतु वे इतनें सघन नहो हैं कि तारापुंजों के समान सघन लगें। क्या अगांग नीहारिकाएँ भी स्वयं समूहो में रहती हैं? इस प्रश्न का उत्तर हम अभी नही दे सकते; हमारे वर्तमान दूरदर्शक इतने शक्तिशाली नही हैं कि वे कई खरब नीहारिकाएँ दिखा सकें; और यदि नीहारिकाएँ समूहो में विभक्ति होंगी भी, तो एक-एक समूह में एक-दो खरब नीहारिकाओं से कम क्या होंगी!

नीहारिकाओं का आरंभ कैसे हुआ? उनका भविष्य क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक देना असंभव है। सिद्धात हम बना सकते हैं, उन सिद्धातों से हम कई बातें समझा सकते हैं, परतु सब नही। कही-न-कही कठिनाई रह जाती है। नूतनतम सिद्धात जीन्स का है। उस के अनुसार आरम में सब पदार्थ प्रायः समरूप से सर्वत्र बिखरा हुआ था। उस में तरंगें उठी और पदार्थ कहीं-कहीं घनीभूत होने लगा। सघन पदार्थ ने पास-पड़ोस के द्रव्य को आकर्षित कर लिया। इस प्रकार बड़े-बड़े पिंड बन गये। आकर्षण के कारण वे संकुचित हुए और इस-लिए वे गरम हो गये, ठीक उसी प्रकार जैसे बाइसिकिल के पंप से पंप के मुह को बंद करके हवा को बलपूर्वक संकुचित करने से पप गरम हो जाता है। जब वे इतने गरम हो उठे कि उन में विशेष ऐटम नष्ट-भ्रष्ट हो सकें तो वहाँ यह क्रिया आरंभ हो गई। इस प्रकार वहाँ और भी ताप उसी प्रकार उत्पन्न हुआ जैसे ऐटम-बम में उत्पन्न होता है। कभी ऐटमों के टूटने से, कभी संकुचन से, तारे तप्त होते रहे और इस प्रकार आकाश में दिखाई पड़ने वाले सभी तारे उत्पन्न हुए। इसी प्रकार अगांग नीहारिकाएँ भी उत्पन्न हुईं, जो वस्तुतः बहुत से तारों के समुदाय-मात्र हैं। तारे

संकुचित और गरम होते-होते ऐसी अवस्था में कभी आ जायेंगे कि और अधिक संकुचित होना उनके लिए असंभव होगा। तब वे धीरे-धीरे ठंडे होने लगेंगे। आकाश में ऐसे तारे देखे भी गये हैं जो अत्यंत संकुचित अवस्था में हैं और संभवतः ठंडे हो रहे हैं। हमारा सूर्य भी इसी प्रकार का तारा है। अभी वह महत्तम घनता तक नहीं पहुँच सका है। संभवतः वह और भी तप्त होगा; तब वह ठंढा होने लगेगा। संभव है सूर्य के अधिक तप्त होने के कारण पृथ्वी पर जीव-जंतु जल-भुन कर भस्म हो जायँ।

सूर्य के बाल्यकाल में ही किसी तारे से उसकी मुठभेड़ हुई होगी। यह नहीं कि वह तारा सूर्य से भिड़ ही गया होगा। वह तारा सूर्य के बहुत पास से, संभवतः सूर्य के व्यास की दुगुनी-तिगुनी दूरी पर से होता हुआ, निकल गया होगा। उससे सूर्य में ऐसी उथल-पुथल मची होगी कि कुछ द्रव्य छटक कर अलग हो गया होगा, या यों कहिये कि तारा अपने आकर्षण द्वारा हमारे सूर्य से कुछ द्रव्य नोचता हुआ निकल गया होगा, परतु इस प्रकार नुचे हुए माल को वह स्वयं पा न सका होगा; यह द्रव्य सूर्य के पास ही रह गया होगा। निकलने के तिरछे वेग के कारण यह द्रव्य सूर्य की चारों ओर नाचने लगा होगा, और इसलिए सूर्य के आकर्षण से वह द्रव्य सूर्य में न गिर सका होगा। वह द्रव्य मछली के आकार का लंबे रूप में रहा होगा, जो पीछे खंडित हो गया होगा। बीच के मोटे खंड से सब से बड़ा ग्रह बृहस्पति बन गया होगा। किनारे-किनारे छोटे ग्रह बने होंगे; बृहस्पति की एक ओर मगल, पृथ्वी, शुक्र और बुध हैं; दूसरी ओर शनि, यूरेनस, नेपच्यून और प्लूटो। सूर्य के ही आकर्षण के कारण पृथ्वी की अर्द्ध पिघली दशा में एक भाग नुच कर चंद्रमा बना होगा। इस प्रकार भारत के प्राचीन ऋषियों की यह धारणा कि चन्द्रमा पृथ्वी से ही निकल कर आकाश में पहुँचा है आज वैज्ञानिक सत्य-सी जान पड़ती है।

अनुक्रमणिका

[माउंट विलसन वेधशाला

माउंट विलसन की वेधशाला

यहाँ संसार का सब से बड़ा तालयुक्त दूरदर्शक है। यह एक सज्जन के दान से बना है।

[हारवार्ड वेधशाला

अरेक्विपा की वेधशाला।
यहाँ से नीहारिकाओं के अनेक फोटोग्राफ लिये गये थे।
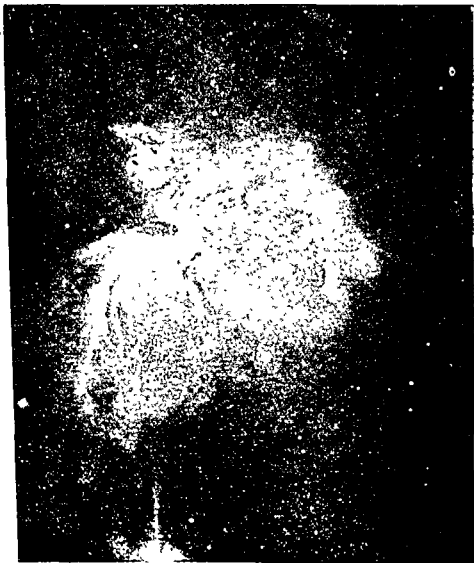
मृग तारामंडल की वृहत् नीहारिका (एन० जी० सी० १९७६, मेसिये ४२)

यह प्रसृत नीहारिका है। अनुमान किया जाता है कि यह निजी चमक से नहीं, पास-पड़ोस के तारों के कारण चमकती है। [१०० इंच वाले दूरदर्शक में।]
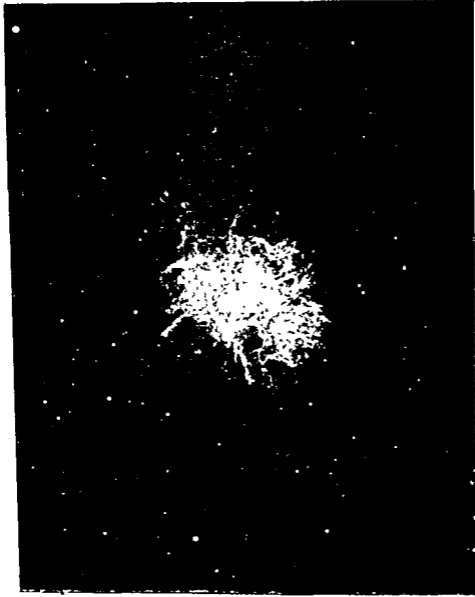
वृष तारामंडल में 'कर्कट' नीहारिका (एन० जी० सी० १९५२; मेसिय १)
यह प्रसृत नीहारिका है। (लाल प्रकाश में २०० इंच वाले दूरदर्शक से लिया गया फोटो।)

देवयानी तारामंडल की बृहत् नीहारिका (एन० जी० सी० २२४, मेसिये ३१)

इस नीहारिका में भुजाएँ दिखायी पड रही हैं, परन्तु वे बहुत स्पष्ट नहीं हैं क्योंकि इसकी धरातल से हमारी दृष्टि ऐसा छोटा ही कोण बनाती है। अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह यह भी कुम्हार की चाक की तरह होगी। [माउंट पालोमर के ४८ इंच वाले श्मिट दूरदर्शक से।]
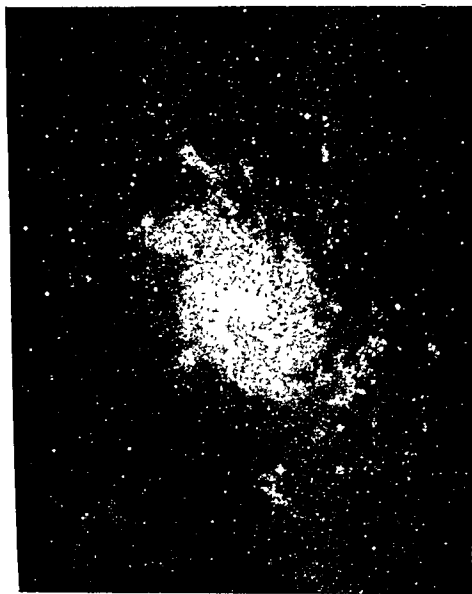
त्रिकोण तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ५९८ मेसिये ३२)

देखें इसकी भुजाएं स्पष्ट दिखाई पडती हैं। लाल प्रकाश में फोटो; माउट पैलोमर के ४८ इंच वाले श्मिट दूरदर्शक से।

मृगयाशुन तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ४२४४)

हम इसे इसकी कोर की दिशा से देखते हैं क्योंकि हम इसके धरातल में हैं। इसी लिये यह नीहारिका हमें लंबी रेखा-सी दिखायी पड़ रही है। परंतु अनुमान किया जाता है कि अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह इसमें भी भुजाएँ होंगी [२०० इंच वाले दूरदर्शक से]।
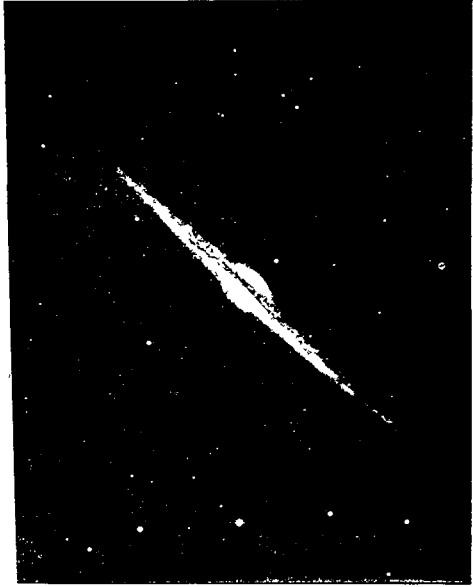
केश तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ४५६५)

अनुमान किया जाता है कि अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह यह नीहारिका भी कुम्हार की चाक की तरह होगी। हम इसके धरातल में हैं; इसी से यह हमें लंबी रेखा-सी दिखायी पड़ती है। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]
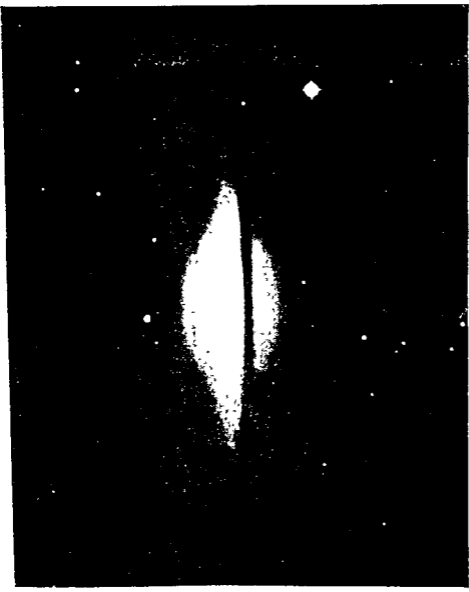
कन्या तारामंडल की एक सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ४५९४)

अन्य सर्पिल नीहारिकाओं की तरह यह नीहारिका भी कुम्हार की चाक की तरह होगी। इसे हम प्रायः इसकी कोर की दिशा से देख रहे हैं; इसीलिये इसकी भुजाएँ हमें नहीं दिखायी पड़ती। बीच का गोलाकार भाग अन्य नीहारिकाओं की अपेक्षा इसमें अधिक विस्तृत है। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

सप्तर्षि तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० २८४१)

संभवत यह नीहारिका भी वृत्ताकार (कुम्हार की चाक की तरह गोल) होगी। तिरछी दिखायी पड़ने के कारण ही यह अंडाकार जान पड़ती है। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]
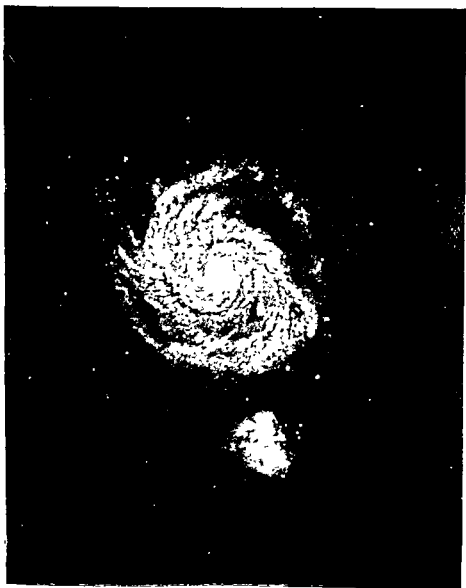
मृगयाशुन तारामंडल की दूसरी सर्पिल नीहारिका
(एन० जी० सी० ५१९४; मेसिये ५१)

इसकी भुजाएँ बहुत ही स्पष्ट दिखायी पड़ती हैं। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]
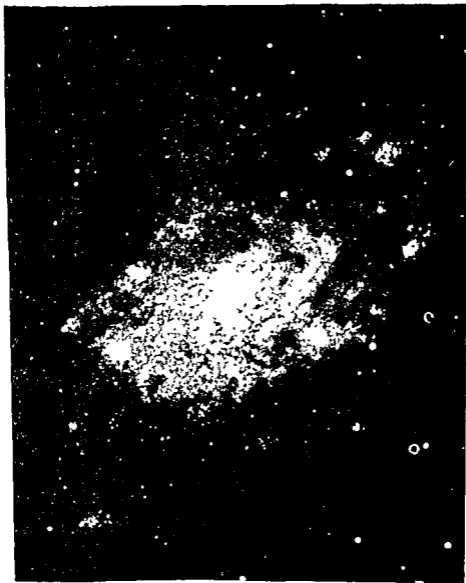
जिराफ तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० २४०३)

इसकी भुजाएँ स्पष्ट दिखायी पडती हैं क्योंकि इसका धरातल हमारी दृष्टि-रेखा पर लंब है। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

पक्षाश्व तारामंडल की दंडमय सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ७७४१)
देखें कि बीच में एक दंड-सी श्वेत रेखा है जो सम्मुख भुजाओं को मिलाती है। इसी से इसे दंडमय नीहारिका कहते हैं। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

कन्या तारामंडल की एक अन्य सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ५२४७)

देखें कि इसकी भुजाएं स्पष्ट दिखायी पड रही हैं। [लिक वेधशाला; ३६ इंच वाले दर्पणयुक्त दूरदर्शक से।]

खगाश्व तारामंडल की सर्पिल नीहारिका (एन० जी० सी० ७४७९)

देखें कि इसकी भुजाएं पूर्णतया स्पष्ट दिखायी पड रही हैं। [माउंट विलसन के ६० इंच वाले दूरदर्शक से।]
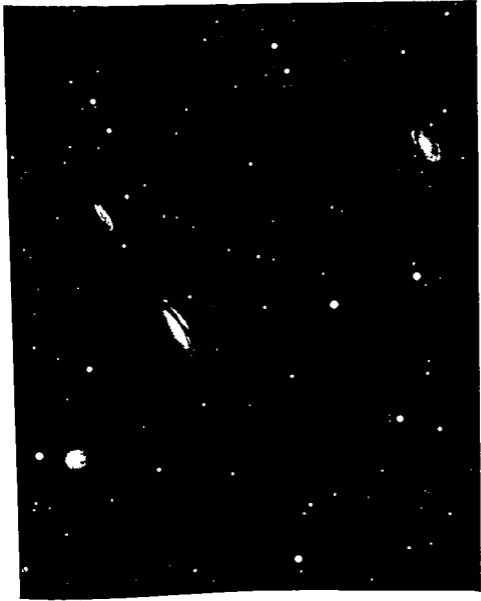
सिंह तारामंडल की चार नीहारिकाएँ

एन० जी० सी० ३१८५ (जाति—एस-बी-सी); एन० जी० सी० ३१८७ (जाति—एस-बी-सी); एन० जी० सी० ३१९० (जाति—एस-बी); एन० जी० सी० ३१९० (जाति—ई २)। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]
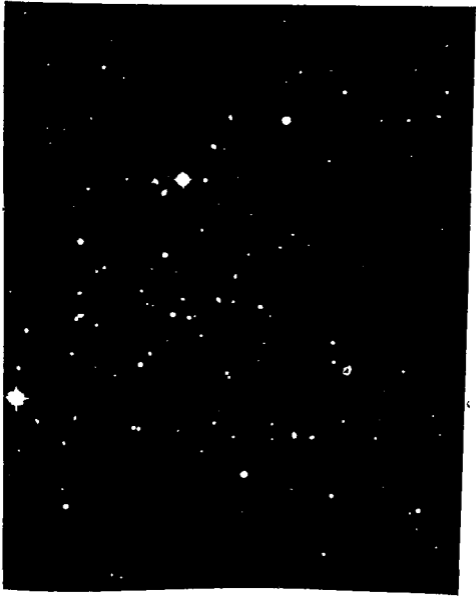
उत्तर किरीट तारामंडल में नीहारिका-गुच्छ।
दूरी लगभग १२ करोड़ प्रकाश-वर्ष। [२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

११ नं. नीहारिका का दक्षिणी भाग

देखें कि छोटे पैमाने पर लिये गये फोटोग्राफों में जो भाग केवल बादल-से जान पड़ते हैं वे वस्तुतः असंख्य तारों के समूह हैं, जैसा इस चित्र से स्पष्ट है। [१०० इंच वाले दूरदर्शक से; छायाकार: हबल।]
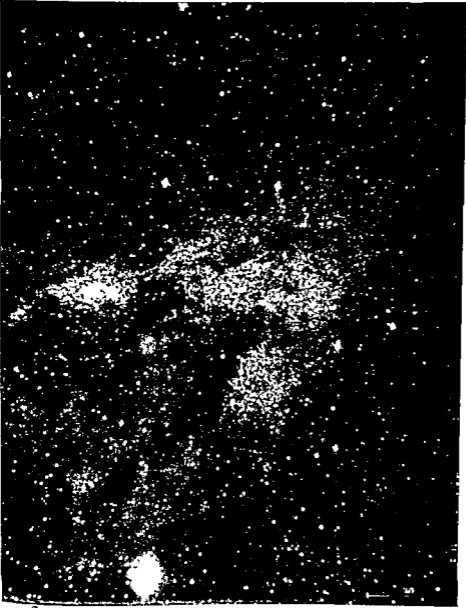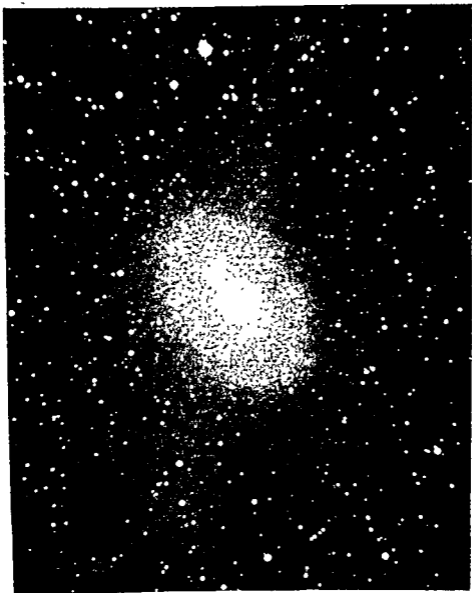
देवयानी तारामंडल की छोटी नीहारिका (एन० जी० सी० १४७)

देखें कि नीहारिका असंख्य तारों से बनी है। लाल प्रकाश से फोटो।
[२०० इंच वाले दूरदर्शक से।]

वीणा तारामंडल की ग्रहीय नीहारिका

विश्वास किया जाता है कि केंद्रीय तारे से निकले पदार्थ से यह नीहारिका बनी है और केंद्रीय तारे के पराकासनी रश्मियों से क्षुब्ध होकर यह चमकती है। [छायाकार: रिची।]